मूल्य : रु. ६/-
अंक : १६४ अगस्त ०६

जन्माष्टमी :
१६ अगस्त

जन्माष्टमी महोत्सव, सूरत आश्रम

संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित

ऋषि प्रसाद

हिन्दी

बालोतरा जि. बाड़मेर (राज.) में भक्तों ने संकीर्तन यात्रा निकाली तथा बुरहानपुर (म.प्र.) के 'बाल संस्कार केन्द्र' द्वारा मंगल कलश यात्रा निकाली गयी।

जमशेदपुर (झारखंड) तथा नक्सल प्रभावित क्षेत्र आलापल्ली जि. गडचिरोली (महा.) में चावल, दाल, बर्तन व वस्त्र वितरण।

गोधरा आश्रम (गुज.) में अनाज-वितरण तथा भूपाल सागर जि. चित्तौड़गढ़ (राज.) में दरिद्रनारायणों को छाता, अनाज, बर्तन, जूते-चप्पल, नकद राशि इत्यादि के साथ पूज्यश्री की तस्वीर भी दी गयी।

दुर्गापुर जि. चंद्रपुर (महा.) के बच्चों में स्कूल बैग व नोटबुक तथा खन्ना जि. लुधियाना (पंजाब) में नोटबुकों का वितरण।

वर्ष : १७ अंक : १६४ अगस्त २००६ श्रावण-भाद्रपद वि.सं. २०६३ मूल्य : रु. ६/-

ऋषि प्रसाद

इस अंक में

मैं तुझे अमृतमय कर दूँगा
पृष्ठ : ०६

माता-पिता व गुरुजनों की महत्ता
पृष्ठ : २०

स्वामी : संत श्री आसारामजी आश्रम
प्रकाशक और मुद्रक : श्री कौशिकभाई वाणी
प्रकाशन स्थल : श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-५.
मुद्रण स्थल : दिव्य भास्कर, भास्कर हाऊस, मकरबा, सरखेज-गांधीनगर हाईवे, अहमदाबाद - ३८००५१
सम्पादक : श्री कौशिकभाई वाणी
सहसम्पादक : डॉ. प्रे. खो. मकवाणा
श्रीनिवास

सदस्यता शुल्क

भारत में
(१) वार्षिक : रु. ५५/-
(२) द्विवार्षिक : रु. १००/-
(३) पंचवार्षिक : रु. २००/-
(४) आजीवन : रु. ५००/-

नेपाल, भूटान व पाकिस्तान में
(१) वार्षिक : रु. ८०/-
(२) द्विवार्षिक : रु. १५०/-
(३) पंचवार्षिक : रु. ३००/-
(४) आजीवन : रु. ७५०/-

अन्य देशों में
(१) वार्षिक : US $ 20
(२) द्विवार्षिक : US $ 40
(३) पंचवार्षिक : US $ 80
(४) आजीवन : US $ 200

ऋषि प्रसाद (अंग्रेजी)	वार्षिक	पंचवार्षिक
भारत में	१२०	५००
नेपाल, भूटान व पाक में	१७५	७५०
अन्य देशों में	US$20	US$80

कार्यालय : 'ऋषि प्रसाद', श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-५.
फोन : (०७९) २७५०५०१०-११.
e-mail : ashramindia@ashram.org
web-site : www.ashram.org

'संत आसारामजी वाणी' प्रतिदिन सुबह ७-०० बजे।

'परम पूज्य लोकसंत श्री आसारामजी बापू की अमृतवर्षा' रोज दोप. २-०० बजे व रात्रि ९-५० बजे।

'संत श्री आसारामजी बापू की अमृतवाणी' दोप. २-४५ बजे।
आस्था इंटरनेशनल
भारत में दोप. ३.३० से।
यू.के. में सुबह ११.०० से।

रोज सुबह ६:३० बजे।

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्र-व्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक अथवा सदस्यता क्रमांक अवश्य लिखें।

Subject to Ahmedabad Jurisdiction

संतवेश पहननेवाले

हिन्दू धर्म व संस्कृति के निंदकों का पर्दाफाश

धर्मनिरपेक्ष शासन में सब धर्मों को समान बताया जाता है और सब धर्मों को अपना प्रचार करने की छूट दी जाती है । इससे आम जनता को भारी हानि होती है। वर्तमान युग में धर्मनिरपेक्षता के नाम पर अनेक पाखंडी और विधर्मी गुरुओं के शोषण का जनता को शिकार बनना पड़ता है।

इसके कुछ प्रमाण कभी-कभी मिलते रहते हैं। एक पाखंडी धूर्त पुरुष ने करौंथा (हरियाणा) में 'सतलोक आश्रम' बनाया और हिन्दू धर्म के अवतारों, सत्शास्त्रों तथा संतों की निंदा करके भोले-भाले लोगों की श्रद्धा का दुरुपयोग किया। वह बरसों तक लोगों को गुमराह करता रहा । आखिर उसकी असलियत प्रकट हुई । उसके आश्रम से स्टेनगन से गोलियाँ चलीं और वह पकड़ा गया। पता चला कि 'राधास्वामी', 'गायत्री युग निर्माण संस्था' और दूसरे सभी संतों की निंदा के लेख वह पैसे देकर छपवाता था।

उसके आश्रम से मिली हुई चीजों से ऐसे तथ्य उजागर हुए कि वह विलासितापूर्ण जीवन जीनेवाला एक अपराधी वृत्ति का व्यक्ति है। वह ऐसा खतरनाक अपराधी है कि बिना लाइसैंस के कई अद्यतन शस्त्र और स्टेनगन रखता है और कई प्रकार से अपनी वासनापूर्ति के लिए जनता का शोषण करता है।

रोहतक रेंज के आई.जी. शरद कुमार ने यह बात स्वीकार की है कि रामपाल को विदेशों से भारी मात्रा में आर्थिक मदद मिल रही थी । रामपाल के पास हथियार कहाँ से आये ? हिन्दू धर्म व संतों-महापुरुषों के खिलाफ टिप्पणियाँ करनेवाले रामपाल पर किसका वरदहस्त है ? इन सभी बातों की जाँच होनी चाहिए ताकि हिन्दुओं की अपने धर्म, संस्कृति पर से श्रद्धा डिगाने के लिए, भारतीय संस्कृति तथा हिन्दू धर्म को नीचा दिखाने के लिए कार्यरत षड्यंत्रकारियों की पोल खुल सके।

हर व्यवसाय में, हर क्षेत्र में ठग घुस जाते हैं और अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए कोई भी बाना पहन लेते हैं। रावण ने भी साधु का रूप लेकर सीता का अपहरण किया था। इससे साधु निंदनीय नहीं हो जाते। चिकित्सा के क्षेत्र में भी कुछ लोग योग्यता प्राप्त किये बिना ही जनता का शोषण करने लगते हैं । इससे चिकित्सक निंदनीय नहीं हो जाते । राजनीति के क्षेत्र में भी कुछ असामाजिक तत्त्व घुस जाते हैं। इससे राजनीति निंदनीय नहीं हो जाती। ऐसे ही किसी धूर्त, ठग, पाखंडी ने हिन्दू संत का रूप व नाम रखकर आश्रम बना लिया इससे सच्चे संत या उनके आश्रम निंदनीय नहीं हो जाते। फिर भी पाश्चात्य मैकाले पद्धति से पढ़े-लिखे लोग ऐसी घटनाओं के आधार पर हिन्दू धर्म को बदनाम करते हों तो उनको सावधान करना हमारा कर्तव्य है और हिन्दू धर्म की प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से निंदा करनेवाले किसी भी तथाकथित संत को ऐसी दुष्प्रवृत्ति से रोकने का हर संभव प्रयास करना चाहिए।

यदि हिन्दू धर्मावलम्बी लोग ही अपने धर्म की रक्षा नहीं करेंगे तो और कौन करेगा ? यदि कोई वर्तमान पत्र या पत्रिका में हिन्दू धर्म की निंदा छपती हो तो उनकी होली जलाकर सामूहिक विरोध प्रकट करना प्रत्येक हिन्दू का कर्तव्य है।

अमेरिका की 'इंस्टीट्यूट ओफ वैदिक स्टडीज' के निदेशक डॉ. डेविड फ्राली कहते हैं : ''भारत को अपने लक्ष्य तक पहुँचना है और वह लक्ष्य है अपनी आध्यात्मिक संस्कृति का पुनरुद्धार । इसमें न केवल भारत का अपितु मानवता का कल्याण निहित है । यह तभी संभव है, जब भारत के बुद्धिजीवी आधुनिकता का मोह त्यागकर अपने धर्म और अध्यात्म की कटु

आलोचना से विरत हों।'' (उत्तिष्ठ कौन्तेय, पृष्ठ-१४)

धर्मनिरपेक्षता के नाम पर शासन जब सब धर्मों को समान घोषित करता हो तो उसे तुरंत ही धर्मपरिवर्तन पर पाबंदी लगा देनी चाहिए। क्योंकि यदि सब धर्म समान हैं तो किसीको धर्म बदलने की क्या आवश्यकता है ?

फिर भी शासन धर्मपरिवर्तन को रोकने में विफल क्यों हो रहा है ? इसका उत्तर देते हुए डॉ. डेविड फ्राली लिखते हैं : ''स्वतंत्रता के बाद एक ओर हिन्दू-विरोधी प्रचार तथा दूसरी ओर साम्यवाद, इस्लाम तथा ईसाई धर्म के प्रचार द्वारा भारत को टुकड़े-टुकड़े करने की साजिश ने इस देश की समस्या को काफी बढ़ाया है। तथाकथित उदार धर्मनिरपेक्ष वे हैं जो भ्रष्ट राजनीतिज्ञ हैं और वे अपनी कुर्सी तथा सत्ता के लालच में भारतीय हिन्दू समाज को जातिवाद एवं धर्म के नाम पर अपने वोट बैंक को बढ़ाने के लिए बरगलाते हैं तथा आपस में द्वेष फैलाकर अपना स्वार्थ सिद्ध करते हैं।''

(उत्तिष्ठ कौन्तेय, पृष्ठ-१३)

ईसाई धर्मप्रचारक किस हद तक पाखंड का सहारा ले सकते हैं इसका एक ज्वलंत दृष्टांत - छत्तीसगढ़ के जांजगीर जिले में नाम स्वदेशी ('सेवा बाबा', 'सेवाश्रम'), वेश स्वदेशी और कर्म धर्मांतरण का - ऐसे फादर जोसेफ परेकाट्टिल का मामला उजागर हुआ है। उसने आश्रम बना रखा है 'सेवाश्रम' और अपना नाम रखा है 'सेवा बाबा' और हिन्दुओं को, भोले-भाले आदिवासियों को अपनी हिन्दू धारा से अलग-थलग करने का, धर्मांतरण करने का काम कर रहा है। जांजगीर जिले में रहनेवाले कई भोले-भाले आदिवासियों को यह गुमराह कर चुका है।

वास्तव में न वह 'सेवा बाबा' है और न ही वह हिन्दुओं का 'सेवाश्रम'। सत्य उजागर करनेवाले ने कहा कि वास्तव में तो वह फादर जोसेफ परेकाट्टिल है जो कहते हैं : ''मैं किसी हिन्दू संत की तरह पवित्र जीवन जीना चाहता हूँ, सो मैंने यह बाना अपना लिया।''

क्या उस पादरी को पता नहीं कि हिन्दू संत जैसा पवित्र जीवन जीने के लिए उसे ईसाइयत का पाखंड छोड़ना पड़ेगा और निष्कपट भाव से हिन्दू धर्म की शरण जाना पड़ेगा। सिर्फ बाना पहन लेने से जीवन पवित्र नहीं हो जाता। लेकिन उनको तो भोले-भाले हिन्दुओं को ठगने के लिए यह बाना पहनना पड़ता है ताकि हिन्दुओं को प्रभावित करके उनको उनके धर्म से विमुख करके उनका धर्मान्तरण करने में सुविधा हो।

इस 'सेवाश्रम' में आस-पास के गाँवों के निवासी आदिवासियों, गरीब भोले-भाले हिन्दुओं को अपनी पावन संस्कृति व परम्पराओं से दूर ले जाने का काम हो रहा है। यहाँ आयी नवागढ़ की ३५ वर्षीया जानकी बाई के दिमाग में यह पक्का हो गया है कि माथे पर सिंदूर लगाने से उसकी दिक्कतें शुरू हो जाती हैं। इसलिए वह अब माथे पर सिंदूर नहीं लगाती है। यह धर्मांतरण की दिशा में पहला कदम कहा जा सकता है।

पूर्व में असामाजिक गतिविधियों में लिप्त, पुलिस से बचकर इधर-उधर भाग रहा जबलपुर का संदीप सिंह १९९५ में ईसाइयत का हथकंडा बना और अब संदीप खुद पादरी और ईसाई धर्मप्रचारक बन गया है। ऐसे ही एक गुंडा तत्त्व ईसाइयत का हथकंडा बना था, जिसने अपना नाम 'ज्ञानेश्वर' रखा था। वह दिनांक १० फरवरी २००६ को मारा गया। पुलिस के अनुसार उस पर कई हत्याओं सहित १६ मुकदमे थे। (दैनिक जागरण, कानपुर, ११.२.०६)

ऐसे पाखंडी विधर्मियों की पोल खोलकर हिन्दू धर्म की रक्षा करना सभी हिन्दुओं का कर्तव्य है। उनको डॉ. एनी बेसेन्ट के वचन हमेशा याद रखने चाहिए : ''यदि आप अपने भविष्य को मूल्यवान समझते हैं, अपनी मातृभूमि पर प्रेम करते हैं तो अपने प्राचीन धर्म की अपनी पकड़ छोड़िये नहीं, उस निष्ठा से च्युत न होइये जिस पर भारत का प्राण निर्भर है। हिन्दू धर्म के अतिरिक्त अन्य किसी धर्म की रक्तवाहिनियाँ ऐसी शुद्ध स्वर्ण की, ऐसी अमूल्य नहीं हैं, जिनमें आध्यात्मिक जीवन का रक्त प्रवाहित किया जा सके।

मैं आपको यह कार्यभार सौंप रही हूँ, हिन्दू धर्म के प्रति निष्ठावान रहो, वही आपका सच्चा जीवन है। कोई धर्मभ्रष्ट, कलंकित हाथ आपको सौंपी गयी इस पवित्र धरोहर को स्पर्श न करे।''

इस प्राकृतिक संध्या का उपयोग कर लो। स्नानादि से प्रफुल्लित बन आसनस्थ हो बैठ जाओ। संध्याकाल में मन शीघ्रता से हृदय-मंदिर के अंतर प्रदेश में, शांति के परम धाम में प्रवेश कर जायेगा।
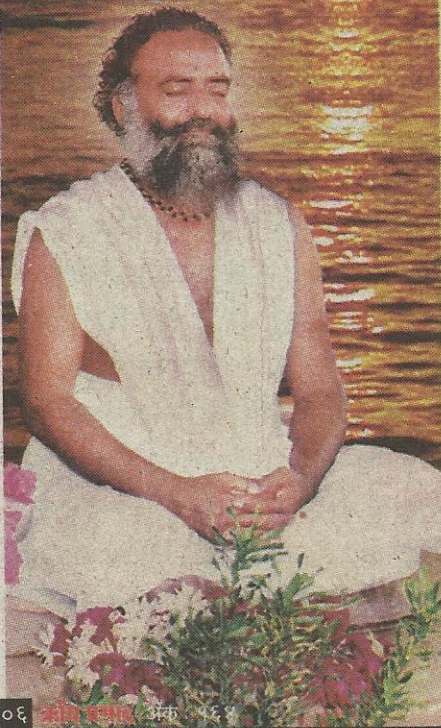
मैं तुझे अमृतमय कर दूँगा

• बापूजी के सत्संग-प्रवचन से

संध्या हो रही है। पक्षी अपने घोंसले की ओर वापस लौट रहे हैं। चारों ओर शांति है। खुद प्रकृति भी अपनी गति को मानों समेट रही है।

प्रिय साधक ! तुम भी अपने अंतर देश की ओर लौट जाओ। इस प्राकृतिक संध्या का उपयोग कर लो। स्नानादि से प्रफुल्लित बन आसनस्थ हो बैठ जाओ। संध्याकाल में मन शीघ्रता से हृदय-मंदिर के अंतर प्रदेश में, शांति के परम धाम में प्रवेश कर जायेगा।

जीवन बहुत अल्प है, वासनाएँ प्रबल हैं। संसार के लिए, शरीर के लिए पूरा दिन बिताया। अब थोड़ा समय अपने लिए भी तो बिताओ ! ईश्वर के लिए, गुरु-अमृत के लिए भी कुछ घड़ियाँ निकालो। वे बहुत कम माँगते हैं, इतना ही कि स्वयं को, अपने-आपको जान लो। ...और इसीमें साधना का पूरा रहस्य निहित है, क्योंकि खुद को जान लेने से तुम गुरु को भी जान लोगे और परमात्मा को भी। जो परमात्मा है, जिस परम तत्त्व में गुरु रमण करते हैं वही तुम्हारा भी उद्गम-स्थान है। जीवन की संध्या ढले उससे पहले, दिन और रात्रि के इस संधिकाल में तुम इस रहस्य में एक गोता मार लो। किसान कण-कण से अन्न का भंडार भर लेता है। कंजूस एक-एक रुपया इकट्ठा करके धन का खजाना बना लेता है। हे अध्यात्म मार्ग के प्यारे पथिक ! तुम भी अपनी आयु की संध्याओं में बैठकर ध्यान के द्वारा परमात्मा से अपना एकत्व जानकर रहस्यमय खजाने को पा लो। तुम वही हो।

लोग कहते हैं : 'ऐ मानव ! याद रख, तू मिट्टी है और मिट्टी में मिल जायेगा।' परंतु तत्त्ववेत्ता गुरुलोग कहते हैं : 'ओ भोले महेश ! अपना स्वरूप जान। तू आत्मा है।'

यह सत्य है कि देह मिट्टी है और मिट्टी में मिल जायेगी लेकिन परम सत्य में प्रतिष्ठित महापुरुषों का पवित्र अनुभव कहता है कि मिट्टी में मिलनेवाली देह तुम नहीं हो। तुम अविनाशी आत्मा हो। मिट्टी में देह मिलेगी, तुम नहीं। तुम्हारे सिवा जो कुछ है वह सब मिट्टी है, नश्वर है। मिट्टी का रूप कितना ही बड़ा हो, सुंदर हो, मनभावन हो

ज्ञानी को आत्मा-परमात्मा जानेगा तो खुद भी आत्मा-परमात्मा के रस में सराबोर होगा ।

किंतु वह नाशवान है। समस्त नाम-रूप के साथ मृत्यु अनिवार्यतः जुड़ी हुई है । व्यक्तित्व नाम-रूप से ओतप्रोत है। अतः हे प्यारे ! तुम इससे दूर रहो।

इन्द्रियों को शांत करो, उनकी चंचलता को मंद कर दो। चित्त को आनंद के आभूषण पहनाकर अंतर्देश में प्रवेश करा दो। संसार के क्रिया-कलापों का विस्मरण कराके उसको हृदयगुहा में रमण करा दो। विस्मरण करने के लिए मेहनत नहीं करो, ॐ का दीर्घ जप.... बीच में शांति, उसमें मन को टिका दो । देहरूप मिट्टी का संग छुड़ाकर उसे अमिट आत्मा का परिचय करा दो।

चित्त को बार-बार आनंद के सागर में डुबाकर उसे जता दो कि तुम मिट्टी नहीं हो, अविनाशी आत्मा हो, नाम-रूप से परे परमात्मा हो, ॐ... ॐ... ॐ... अमर आत्मा हो... ॐ... ॐ... यही सर्व धर्मों का सार है। इसीमें तुम्हारा अमरत्व है। देह से आज तक न कोई अमर हुआ है, न होगा । आत्मस्वरूप से तुम शुद्ध और परम पवित्र हो। देहभाव छोड़ दो, अपनेको आत्मभाव में जगा दो और आनंदमय हो जाओ।

स्वामी बनने की कोशिश न करो क्योंकि तुम स्वामी हो ही, महान बनने के लिए मजदूरी न करो, तुम महान हो ही; केवल यह जान लो। व्यक्तित्व के विकास की प्रक्रिया समय के अंतर्गत है परंतु पूर्णता का अनुभव अनंत में है। तुम समय के नहीं हो, तुम अनंत के हो। यह जानकर सब आयास छोड़ आत्मा में विश्राम पाओ।

तुम्हारे अंदर जो सबसे महान तत्त्व है उसे जानो, उसीकी उपासना करो। सबसे महान जो तत्त्व है वह और तुम एक हो। यह जानना ही सर्वोत्तम उपासना है। यही परमात्मा की सच्ची उपासना है।

हे पथिक ! अपने इस परम लक्ष्य को समझ लो। तुममें जो सबसे महान तत्त्व है उसीको तुम परमात्मा कहते हो। अब बताओ, तुमसे परमात्मा कितना दूर है ?

सब स्वप्नों को विस्मरण की कंदरा में फेंक दो। इस सांध्य ध्यान की पावन अवस्था में अपने भीतर के परमात्मा की आवाज सुनो। सुनकर उसे समझो। समझकर उसे देखो। देखकर उसे जानो। जानकर उसका अनुभव करो कि तुम वही हो कि नहीं। **तत्त्वमसि।**

ध्यान के वक्त संसार से अलग हो जाओ, असंग हो जाओ । संसार स्वप्न का बना हुआ है। शरीर उस स्वप्न का आधार है। शरीर से असंग अनुभव कर लिया तो समग्र संसार से असंग हो ही गये।

क्या तुम यह स्वप्न देखते ही रहोगे ? क्या तुम इस विकट बंधन में प्रमाद से पड़े ही रहोगे ? उठो, जागो और लक्ष्य की प्राप्ति न हो जाय तब तक रुको नहीं।

हर एक संध्या का ध्यान इस बंधन पर प्रहार है। इस प्रहार में क्रूरता नहीं, परिश्रम नहीं, आयास नहीं बल्कि प्रेमावस्था है, विश्राम है, शांति है। यह शांति ऐसी गंभीर है कि जिसमें परमात्मा की वाणी के सिवाय और कुछ सुनायी नहीं देता। परमात्मा कहते हैं : **'तत्त्वमसि।'** तू वही है।

परम शांति आत्मा का स्वभाव है, तुम्हारा स्वभाव है। ॐ शांतिः शांतिः शांतिः... परम शांति... अनिर्वचनीय शांति...

अरे मन ! फिर बाहर कहाँ जा रहा है ? फिर नाम-रूप का चिंतन क्यों कर रहा है ? मेरे प्यारे मन ! आ जा तू इस अलौकिक आनंद सागर में। तू बार-बार भागेगा... मैं बार-बार तुझे रिझाकर अमृतमय कर दूँगा, क्योंकि मैं अमृतस्वरूप हूँ। गुरुप्रसाद से यह मैंने जान लिया है।

खूब शांति... ! परम शांति... !
अनिर्वचनीय शांति... !
ॐ... ॐ... शांति... ! ॐ आनंद... !

सर्वतःपाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतःश्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥

'वह परम पुरुष परमात्मा सब जगह हाथ-पैरवाला, सब जगह आँख, सिर और मुखवाला तथा सब जगह कानोंवाला है । वही ब्रह्माण्ड में सबको सब ओर से घेरकर स्थित है ।' **(श्वेताश्वतर उपनिषद् : ३.१६)**

बोझ क्यों ढो रहे हो ?

● बापूजी के सत्संग-प्रवचन से

संसार में या तो अनुकूलता आयेगी या प्रतिकूलता आयेगी, तीसरा तो कुछ है नहीं । या तो यश आयेगा या अपयश आयेगा और क्या होगा ? तीसरा तो कुछ है नहीं । परमात्मा तो अपना स्वरूप है । वह तो आयेगा नहीं, जायेगा भी नहीं और जो आयेगा वह जरूर जायेगा । तुम भी जाओगे । जाओगे कि नहीं जाओगे ? तो सब जब जानेवाला ही है तो उनका बोझा अपने सिर क्यों रखना ?

स्वामी रामतीर्थजी दृष्टांत देते थे कि एक युवक की शादी हुई । पहली बार ससुराल गया तो सामान और कपड़े-लत्ते लेकर गया । उन दिनों घोड़े पर जाना होता था । गर्मियों के दिन थे । देखा कि घोड़े की जिन-विन सब पसीने से भीग गयी है। उसे बड़ी दया आयी कि 'मैं कितना निर्दयी हूँ ! एक मैं बैठा हूँ और दूसरा यह सामान, तीसरा यह बिस्तर, चौथा यह थैला । इस बेचारे घोड़े पर इतना बोझा ! अब इससे बोझा हटा लेता हूँ, अपने उठाओ थोड़ा ।'

वह युवक उतरा, कुछ सामान पीठ पर लादा, कुछ बगल में लटका लिया, लोहे की पेटी थी उसे सिर पर रख लिया और घोड़े पर बैठ गया । घोड़ा दौड़ा तो सामान लादने के बोझ से युवक के शरीर की हड्डी-पसली की खिंचायी हो गयी । वह ससुराल पहुँचा तो गाँववाले आये और बोले : ''इनका स्वागत-समारोह करें ।'' युवक बोला : ''समारोह बाद में, पहले खटिया लाओ और खटिया ऐसी हो जिस पर लिटाकर मुझे अस्पताल ले जा सको ।''

ऐसे ही तुम्हारे जीवन का सारा बोझा परमात्मारूपी घोड़े पर है और तुम उसे अपने ऊपर लादकर नाहक परेशान होते हो ।

बच्चों का क्या होगा ? अरे ! तुम बच्चों के लिए क्या करते हो ? बच्चों को जन्म देना तुम्हारे हाथ की बात नहीं है । बच्चों को प्रसन्न रखना तुम्हारे हाथ की बात नहीं है । उनकी अक्ल होगी तो प्रसन्न रहेंगे । तुम्हारा जन्म तुम्हारे हाथ की बात नहीं है । तुम्हारी मौत तुम्हारे हाथ की बात नहीं है । बाल सफेद होने से रोकना तुम्हारे हाथ की बात नहीं है । जब मुख्य-मुख्य काम तुम्हारे हाथ की बात नहीं है तो फिर दूसरा भी सौंप दो परमात्मा को । परमात्मा को डोरी सौंप के तो देखो !

मेरो चिंत्यो होत नहिं हरि को चिंत्यो होय ।
हरि को चिंत्यो हरि करे मैं रहूँ निश्चिंत ॥
चिंता से चतुराई घटे घटे रूप और ज्ञान ।
चिंता बड़ी अभागिनी चिंता चिता समान ॥

निश्चिंत माना आलसी नहीं, चिंतारहित होकर कर्म करो, फिर जो परिणाम आये 'वाह-वाह...' या तो बरसात पड़ेगी या नहीं पड़ेगी और क्या होगा ? और जो लोग निश्चिंत होते हैं न, उनके कार्य भगवान की दया से हो ही जाते हैं । ऐसे कई लोगों को मैं जानता हूँ । आकर बोलते हैं

मैं हकीकत कह रहा हूँ कि तुम्हारा गोत्र परमात्मा है और यदि तुम इन्कार करते हो तो कर लो शास्त्रार्थ । तुम्हारा गोत्र परमात्मा नहीं है यह बात तुम साबित करके दिखाओ तो मैं तुम्हारा शिष्य हो जाऊँगा ।

कि ''साँई ! बच्ची बड़ी हो गयी है...'' मैंने कहा : ''तू बड़ को फेरा फिर ले और निश्चिंत हो जा ।'' अभी आये कि ''साँई ! रिश्ता ऐसी जगह पर हो गया कि आहा !...'' होना ही था, कोई बड़ी बात है क्या ? यह नियम है, कायदा है कि तुम जब निश्चिंत हो जाते हो तो तुम्हारे कार्य करने के लिए प्रकृति तुम्हारे अनुकूल हो जाती है ।

जंगल में है मंगल जो होय तू फक्कड़ ।

होय तू फक्कड़ दिल के छोड़े मक्कड़ ॥

जीवन जैसा भीतर ऐसा बाहर हो जाय तो कोई आपत्ति नहीं है । जीवन इतनी मजदूरी से थोड़े ही जीया जाता है ? जीना तो बड़ा आनंदप्रद है । दुःख तो है ही नहीं पर लोग ऐसा दुःख बना लेते हैं कि सुख दिखता नहीं, दुःख-ही-दुःख दिखता है । तुम भीतरवाले से एक होकर जब हरकत करते हो तो प्रकृति तथा लोग तुम्हारे साथ हो जाते हैं और भीतरवाले से एकता छोड़ देते हो व बाहरवाले को रिझाने लगते हो तो वे तुम्हें धोखा दे देते हैं ।

यदि तुम बाहरवाले को भीतरवाले से अलग मानोगे तो बाहरवाला तुमको धोखा देगा । तुम क्षत्रियों को आत्मा से अलग मानोगे तो क्षत्रिय लोग तुम्हारा अनादर करेंगे । तुम सेठ और साहबों को परमात्म-सत्ता से अलग मानते हो, अपने आत्मा से अलग मानते हो तो सेठ और साहब तुम्हारा तिरस्कार करेंगे । तुम नौकर को आत्मा से अलग मानते हो तो नौकर तुम्हारे साथ गद्दारी करेगा और तुम पराये बच्चों को भी अपना आत्मा मानते हो तो वे तुम्हारा आदर करेंगे, तुम्हारे निर्देशानुसार चलेंगे, सब सेवाधारी होकर सेवा करेंगे, साधना करेंगे, ध्यान करेंगे, भजन करेंगे । यहाँ (आश्रम में) सबके भोजन-छाजन, रहन-सहन, खान-पान की व्यवस्था और इतनी बड़ी भारी भीड़ ! एक भी नौकर नहीं है, फिर भी सबके खान-पान, रहन-सहन की सहज में व्यवस्था हो रही है ।

सबको अपना स्वरूप मानकर चलो तो सब अनुकूल हो जायेंगे । शरीर के बेटों को अपना बेटा मत मानो, ये तो शरीर के बेटे हैं, शरीर की बेटियाँ हैं । शरीर के मकान को अपना मकान मत मानो, शरीर की दुकान को अपनी दुकान मत मानो, शरीर की जाति को अपनी जाति मत मानो, तुम्हारी जाति तो ब्रह्म है । तुम्हारी जाति चैतन्य आत्मा है, ब्रह्म की जाति हो तुम ।

हम यात्रा पर गये थे । पंडों को दक्षिणा दी तो बोले : ''गुरुजी ! संकल्प करो, अपना गोत्र बताओ ।''

मैंने कहा : ''मेरा गोत्र तो ब्रह्म है ।''

''आपका कुल ?''

''ब्रह्म ।''

बाह्य गोत्र याद रहे तो ठीक है लेकिन मूल गोत्र तो ब्रह्म है सबका । सब ब्रह्म में से तो निकले हैं । तुम्हारा मूल गोत्र परमात्मा है, मूल कुल भी परमात्मा है । कितनी खुशखबर है कि तुम्हारा कुल-गोत्र परमात्मा है । ॐ... ॐ... और यह तुम्हें खुश करने के लिए जैसे नेता लोग भाषण में कुछ मस्का मार देते हैं, ऐसे मैं खुशामद नहीं कर रहा हूँ । मैं हकीकत कह रहा हूँ कि तुम्हारा गोत्र परमात्मा है और यदि तुम इन्कार करते हो तो कर लो शास्त्रार्थ । तुम्हारा गोत्र परमात्मा नहीं है यह बात तुम साबित करके दिखाओ तो मैं तुम्हारा शिष्य हो जाऊँगा । नहीं तो मैं साबित करके बैठा हूँ कि तुम्हारा गोत्र परमात्मा है, तुम्हारा कुल परमात्मा है ।

और हमारा परमात्मा आकाश-पाताल में नहीं, वह एक क्षण भी हमको छोड़कर हमसे अलग नहीं है - यह भी तुमको अनुभव हो सकता है ।

देह छतां जेनी दशा वर्ते देहातीत ।

ते ज्ञानीनां चरणमां हो वन्दन अगणित ॥

शरीर होते हुए भी शरीर से अतीत, ऐसे ज्ञानी के चरणों में अनगिनत प्रणाम !

जीवन में बजे श्रीकृष्ण की बंसी

• बापूजी के सत्संग-प्रवचन से

'जन्माष्टमी' तुम्हारा आत्मिक सुख जगाने का, तुम्हारा आध्यात्मिक बल जगाने का पर्व है, जीव को श्रीकृष्ण-तत्त्व में सराबोर करने का त्यौहार है, तुम्हारा सुषुप्त प्रेम जगाने की दिव्य रात्रि है ।

हे कृष्ण ! कुछ लोगों का मानना है कि सच्चे व्यक्तियों की कीर्ति, शौर्य और हिम्मत बढ़ाने व मार्गदर्शन देने के लिए आप अवतरित हुए । कुछ मानते हैं कि जैसे मलयाचल में चंदन के वृक्ष अपनी सुगंध फैलाते हैं, वैसे ही अपने सोलह कला सम्पन्न अवतार से आप यदुवंश की शोभा और आभा बढ़ाने के लिए अवतरित हुए । कुछ लोग यों कहते हैं कि वसुदेव और देवकी की तपस्या से प्रसन्न होकर देवद्रोही दानवों के जुल्म दूर करने, भक्तों की भावना को तृप्त करने के लिए वसुदेवजी के यहाँ निर्गुण-निराकार ईश्वर सगुण-साकार होकर अवतरित हुए । लीला और लटकों के भूखे ग्वाल-गोपियों को प्रसन्न करने,आनंद का दान करने के लिए आप अवतरित हुए । कुछ लोग यों भी कहते हैं कि जैसे नाव सागर में अधिक वजन लेकर चलने से डूब जाती है, ऐसे ही पृथ्वी जब पापियों के भार से डूबी जा रही थी, तब पृथ्वी ने पापियों के पाप-प्रभाव से दुःखी हो ब्रह्माजी की शरण ली और ब्रह्माजी ने आपकी शरण ली । तब हे अनादि, अच्युत ! हे अनंत कलाओं के भंडार !! पृथ्वी का भार उतारने के लिए आप सोलह कलाओं सहित पृथ्वी पर प्रकट हुए । शिशुपाल, कंस, शकुनि, दुर्योधन जैसे दुर्जनों की समाजशोषक वृत्तियों को ठीक करने के लिए, उनको अपने कर्मों का फल चखाने के लिए और भक्तों को सच्चाई व स्नेह का फल देने के लिए हे अच्युत ! हे अनादि !! आप साकार अवतार लेकर प्रकट हुए ।

कुंताजी कहती हैं :

''हे भगवान ! वासना के वेग से बारम्बार जन्म, मृत्यु के चक्कर से संसार के कुचक्र में बह जानेवाले जीवों को निर्वासनिक तत्त्व का प्रसाद दिलाने के लिए, लीला-माधुर्य, रूप-माधुर्य और उपदेश-माधुर्य से जीव का अपना निजस्वरूप जो कि परम मधुर है, सुखस्वरूप है उसका ज्ञान कराने के लिए, आत्मप्रसाद देकर जीवों को तारने के लिए आपका अवतार हुआ है ।''

जीव के चौरासी लाख जन्मों के जो संस्कार हैं, उन्हीं संस्कारों को लेकर वह मनुष्य-शरीर में आता है । अतः वह स्वाभाविक ही विषय-विकारों एवं इन्द्रियों के भोगों में भटकता है । खाना-पीना, सोना, भयभीत होना, बच्चों को जन्म देना, दुःख आये तो घबराना, सुख आये तो हर्षित होना और आखिर में मर जाना - ये पुराने काम करते-करते जीव मनुष्य-शरीर में आया है । मनुष्य-शरीर में भी यही काम करते-करते वह खत्म न हो जाय इसीलिए भगवान का अवतार होता है ।

अवतार किसको कहते हैं ?

अवतरति इति अवतारः । जो ऊपर से नीचे आये उसे अवतार कहते हैं । एक होता है 'आरोहण' दूसरा होता है 'अवतरण' । आरोहण माने नीचे से ऊपर उठना। शिशु कक्षावाला प्राथमिक में गया, फिर माध्यमिक में गया, महाविद्यालय में गया, पीएच.डी. हुआ अथवा चपरासी में से बाबू बन गया तो यह हुआ आरोहण पर कोई

बहरा सुन सके और अंधा पढ़ सके ऐसी अगर कोई भाषा है तो वह है प्रेम, स्नेह ।

उद्योगपति अपने कारखाने में जाय, मैनेजर तथा अन्य मजदूर लोगों के साथ मिलकर हँसते-खेलते काम करे तो उस उद्योगपति का अवतरण हो गया अथवा कोई राजाधिराज-महाराज प्रजा के हित के लिए, अपने कार्यालयों में नौकर-चाकरों के साथ कार्यशैली बताने के लिए बैठे रहें तो यह उनका अवतरण हो गया । ऐसे ही संसार में भटकनेवाला जीव उपवास-व्रत रखता है, नियम करता है, धीरे-धीरे अपने आत्मा-परमात्मा के सुख को पाने के योग्य बनता है - यह है आरोहण और भगवान का होता है अवतरण ।

सामान्य आदमी कार्यालय में, दुकान में या राजा राज्य में जाता है तो अपने स्वार्थ से जाता है परंतु भगवान जब धरती पर अवतार लेते हैं तो उनका स्वार्थ नहीं होता, वे कृपावश, सुहृदयतावश अवतार लेते हैं ।

हेतु रहित जग जुग उपकारी ।
तुम्ह तुम्हार सेवक असुरारी ॥
(रामचरित., उ.कां. : ४६.३)

भक्त, सज्जन, साधु पुरुषों का उद्धार करने के लिए तथा दुष्कृत करनेवालों का विनाश करने के लिए अवतार होता है । 'गीता' (४.८) में आता है :

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।

जो साधु स्वभाव के हैं, जिनके लिए संसार असार है और भगवान ही सार हैं; जो सच्चाई से, प्रसन्नता से, पवित्रता से, परहित की भावना से जीते हैं, ऐसे साधुजनों के पोषण के लिए और जो शोषण करते हैं, अति स्वार्थी हैं, अति कामी हैं, अति क्रोधी हैं, अति मोही, लोभी, लालची हैं, ऐसे लोगों का विनाश करके उनका कल्याण करने के लिए जो अवतरण है उसे अवतार कहते हैं ।

दुर्जनों के विनाश में भी उनका हित है, परम कल्याण है क्योंकि उनको भगवद्धाम की प्राप्ति हो जाती है और विनाश होने से वे पापकर्म करने से, शोषण करने से रुक जाते हैं, अधिक भोग-वासना से बच जाते हैं ।

समाज में जब शोषक लोग बढ़ गये, दीन-दुःखियों को सतानेवाले तथा चाणूर और मुष्टिक जैसे पहलवानों व दुर्जनों का पोषण करनेवाले क्रूर राजा बढ़ गये, समाज 'त्राहिमाम्' पुकार उठा, सर्वत्र भय व आशंका का घोर अंधकार छा गया, तब भाद्रपद मास में कृष्णपक्ष की अंधकारमयी अष्टमी को कृष्णावतार हुआ । जिस दिन वे निर्गुण, निराकार, अच्युत, माया को वश करनेवाले, जीवमात्र के परम सुहृद प्रकट हुए, वह पावन दिन 'जन्माष्टमी' कहलाता है । उसकी आप सबको बधाई हो ।

आवश्यक नहीं है कि आप भगवान श्रीकृष्ण का अवतार रात्रि के बारह बजे ही मनाओ । श्रीकृष्ण का अवतार-उत्सव तो आप जब चाहो तब मना सकते हो । श्रीकृष्ण का अवतार-उत्सव मनाने से अभिप्राय है श्रीकृष्ण का आदर्श, श्रीकृष्ण का संकेत जीवन में लाना । हमने 'कृष्ण-कन्हैया लाल की जय' कह दिया, मक्खन-मिश्री बाँट दिया - खा लिया, इतने से ही अवतार-उत्सव मनाने की पूर्णाहुति नहीं होती । श्रीकृष्ण जैसी मधुरता को और चित्त की समता को जीवन में तमाम परेशानियों के बीच रहकर भी बनाये रखने का हमारा प्रयत्न होना चाहिए । यह जन्माष्टमी अपने प्रेम को प्रकट करने का संदेश देती है । जितना अधिक हम आत्मनिष्ठा में आगे बढ़ते हैं, उतना-उतना हम श्रीकृष्ण का आदर करते हैं और श्रीकृष्ण का अवतार मनाते हैं ।

जन्माष्टमी पर हम संकल्प करें कि 'गीता' के संदेश को, योग के संदेश को, आत्मज्ञान के अमृत को हम भी पीयें और जगत में भी इस जगद्गुरु का प्रसाद बाँटें ।

वन्दे कृष्णं जगद्गुरुम् ।

श्रीकृष्ण का जन्मोत्सव तब पूर्ण माना जायेगा जब हम उनके सिद्धांतों को समझेंगे तथा उन्हें अपने जीवन में उतारने की कोशिश करेंगे । जैसे गोकुल में कंस का राज्य नहीं हो सकता, ऐसे ही तुम्हारी इन्द्रियों के गाँव अर्थात् शरीर में भी कंस का अर्थात् अहंकार का राज्य न रहे अपितु श्रीकृष्ण की बंसी बजे, यही जन्माष्टमी का हेतु है ।

कृतज्ञता-ज्ञापन का पर्व : ऋषि पंचमी

● बापूजी के सत्संग-प्रवचन से

चित्त में छुपे हुए परमात्म-खजाने को पाने के लिए ऋषियों का चिंतन-स्मरण करके जीवन में ऋषियों के प्रसाद को भरने का दिन है 'ऋषि पंचमी' । यह संकल्प करने का दिन है कि 'हम सुख-दुःख में सम रहेंगे, मान-अपमान में सम रहेंगे, संसार का व्यवहार कुशलता से करेंगे किंतु कर्ताभाव नहीं रखेंगे । ऋषियों की तरह कर्मफल को ईश्वरार्पण कर देंगे ।'

ऋषियों के सिद्धांत को जितना अपने जीवन में उतारेंगे ऋषि-पूजन उतना सार्थक होगा, उतना दिव्य, सुंदर, मधुर होगा । महापुरुषों को अपने बाह्य पूजन में इतनी प्रीति नहीं होती, जितना उन्हें अपना सिद्धांत प्रिय होता है । हम उनका सिद्धांत मानने लगें तो उनका पूजन हो गया समझो । उनका सिद्धांत है, 'जीव संसार के बंधन से पार होकर अपने निजस्वरूप को निहारे; अपने आत्मस्वरूप में विश्रांति पा ले; **'सोऽहं'** नाद जगाकर अपने निजस्वरूप का अनुभव कर ले ।'

सुख-दुःख, मान-अपमान, पुण्य-पाप कर्ताभाव से होते हैं और कर्ताभाव देह को 'मैं' मानने से होता है । स्थूल तथा सूक्ष्म शरीर को 'मैं' और 'मेरा' मानकर किया गया कर्म कर्तापन से बँधा हुआ कर्म होता है । 'मैं देह नहीं आत्मा हूँ' - ऐसा जानना और अपने आत्मभाव को जाग्रत करना यह ऋषियों का आदर और पूजन करने के बराबर है ।

कश्यपोऽत्रिर्भरद्वाजो विश्वामित्रोऽथ गौतमः ।
जमदग्निर्वसिष्ठश्च सप्तैते ऋषयः स्मृताः ॥

सप्तर्षियों का स्मरण पातक का नाश करनेवाला, पुण्य अर्जन करनेवाला, हिम्मत देनेवाला है । ज्ञान प्राप्त करने के लिए जिन महापुरुषों ने एकांत अरण्य में निवास करके अपने प्रियतम परमात्मा में विश्रांति पायी ऐसे ऋषियों, आर्षद्रष्टाओं को हमारे प्रणाम हैं ।

जिन ऋषियों ने राज्य करते-करते परमात्म-विश्रांति पायी वे राजर्षि कहलाये, जिन्होंने एकांत अरण्य में ब्रह्मचिंतन करते-करते आत्म-अमृत को पाया वे ब्रह्मर्षि कहलाये, जो आत्मपद को पाकर सदा-सदा के लिए अमरता में स्थित हो गये वे देवर्षि कहलाये । उन ऋषि-मुनियों का पावन स्मरण-चिंतन हमारे में भी उमंग, उत्साह बढ़ाता है, हमारी दृढ़ता बढ़ाता है ।

जो आत्मरामी संत हैं उनका सहज संकल्प संसारियों को अमाप कीर्ति एवं चिरस्थायी शांति का दान कर सकता है । जिन्होंने आत्मा में विश्रांति पायी है ऐसे महापुरुषों का सहज स्मरण व सान्निध्य मानव-जाति के तमाम दुःखों को हरने का सामर्थ्य रखता है । यह अमोघ शस्त्र है । मानव के प्रत्येक दुःख, विघ्न-बाधा व समस्या का समाधान ऋषियों की ज्ञानदृष्टि में भरा हुआ है । ऋषि मनुष्य की उलझनों को भी जानते हैं और उसकी महानता को भी जानते हैं ।

ऋषि की दृष्टि में तत्त्व-साक्षात्कार, परमात्म-प्राप्ति सहज है, संसारी की दृष्टि में वह दुर्लभ है । 'जो आता-जाता है वह नश्वर है । जो उत्पत्ति, स्थिति एवं नाशवाला है वह माया है । जो उत्पत्ति, स्थिति एवं नाश को निहारता है वह महेश्वरस्वरूप है । जो इन्द्रियों को, मन को, बुद्धि को निहारता है वह द्रष्टास्वरूप मेरा आत्मा है' - ऋषियों की ऐसी दृष्टि को हम भी अपनायें तो बेड़ा पार हो जाय ।

छोटी-छोटी बातों में अपना चित्त खिन्न न हो जाय, इसका ध्यान रखें । हृदय की शांति के लिए बाहर के तुच्छ भोग-विलास की नाली में न गिरें अपितु आत्मविश्रांति के अमृत में डुबकी लगाते रहें, अंतर्यामी परमात्मा को प्यार

न्हाए धोए क्या भया, जो मन-मैल न जाय ।
मीन सदा जल में रहे, धोए गन्ध न जाय ॥

करते जायें ।

अंतर्यामी परमात्मा का अपने हृदय में अनुभव करके सब जगह उस प्यारे को निहारनेवाले ऋषियों को पूरा विश्व भगवत्स्वरूप लगता है । वे महापुरुष विश्ववाटिका को सुंदर रखने के लिए प्रकट होते हैं । उनका स्वनिर्मित विनोद जनसमाज का कल्याण कर देता है । संसार-वाटिका को सुंदर रखने के लिए वे महापुरुष अथक प्रयास कर रहे हैं ।

ऐसे ऋषियों, ऋषि-पत्नियों और महान ऋषितत्त्व को पायी हुई विदुषियों का स्मरण करके तुम्हारे चित्त को चैतन्यस्वरूप में, सोऽहंस्वरूप में, आत्मस्वरूप में जगा दो । शरीर में कब तक अटकोगे ? 'मेरे-तेरे' के भाव को कब तक सच्चा मानोगे ? यह सब मन की कल्पना है । रात्रि को सो जाने पर 'मेरा-तेरा' सब भूल जाते हैं । समाधि में भी 'मेरा-तेरा' नहीं रहता । समाधि से उठने पर फिर से नया जगत शुरू होता है । इस मन की माया से पार होकर अपने आत्मा में विश्रांति पाओ । ऋषियों की प्रसन्नता, ऋषियों का आशीर्वाद, ऋषियों की अहैतुकी कृपा तुमको सहज ही प्राप्त होगी ।

> 'मैं वकील हूँ... फलाना हूँ...' - ईश्वर से आपने दीवार बना ली । जितना 'मैं' भीतर से हटता जायेगा उतना ईश्वरत्व उभरता जायेगा । 'मैं' परिच्छिन्नता लाता है, अहंकार लाता है ।

एक क्षण की चित्त की विश्रांति अखूट संपत्ति से ज्यादा मूल्यवान है । चित्त की विश्रांति तुम्हारा धन है । बाहरी धन के ढेर वास्तव में तुम्हारे नहीं हैं और तुम्हारे काम में नहीं आयेंगे । वे तो तुम्हारे शरीर के काम आयेंगे । तुम्हारे काम तो तुम्हारे चित्त की विश्रांति आयेगी । तुच्छ वस्तुओं का इतना ज्यादा मूल्य न आँको कि परमात्म-विश्रांति बिखर जाय । धन कमाना, धन का उपयोग करना और धन को जब छोड़ना पड़े तब छोड़ने की भी पूरी तैयारी होनी चाहिए । मृत्यु जबरदस्ती छुड़ाये उसके पहले ऐहिक वस्तुओं की ममता छोड़कर अमर आत्मा के सुख का आस्वादन करते रहना - यह ऋषि पंचमी के प्रसाद को पचाने के बराबर है ।

मन-इन्द्रियों को शांत करके परमात्मा का ध्यान करना सर्व धर्मों में श्रेष्ठ धर्म है । इन्द्रियों को मन में लीन करें, मन को बुद्धि में और बुद्धि को बुद्धिदाता परमात्मा में, शांत प्रसाद में स्थिर करना सब धर्मों और कर्मों में श्रेष्ठ धर्म और कर्म है । जो ऐसे श्रेष्ठ धर्म का आचरण करता है उसके ऊपर ऋषियों की अहैतुकी कृपा बरसती ही रहती है ।

जिन ऋषियों ने हमारे जीवन से पाशवी विचारों को हटाकर हमें परमेश्वर स्वभाव में जगाने के लिए प्रयास किया, जिन ऋषियों ने हमारे विकास के लिए सहयोग देकर समाज का उत्थान करने की चेष्टा की, उन ऋषियों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने का जो दिन है वही 'ऋषि पंचमी' है ।

जब तक मनुष्य अपने आत्मतत्त्व को नहीं जानता, अपनी अद्वैतता को नहीं जानता, तब तक उसके द्वारा किये हुए शुभाशुभ कर्म उसको सुख-दुःख रूपी फल देते ही हैं । जाने-अनजाने ऐसे ऋषियों के प्रति हमसे कोई अपराध हो गया हो, किसी महिला द्वारा मासिक धर्म के समय संतद्वार, देव मंदिर या संत दर्शन हो गया हो तो इन अपराधों की क्षमाप्राप्ति का भी यह दिन है । ज्ञात-अज्ञात पापों के शमन हेतु स्त्री-पुरुष दोनों यह व्रत करते हैं परंतु स्त्रियों को तो यह अवश्य ही करना चाहिए ।

यह दिन त्यौहार का नहीं, व्रत का है । हो सके तो इस दिन अपामार्ग (लटजीरा) का दातुन करें । शरीर पर गाय के गोबर का लेप करके नदी में १०८ गोते मारने का विधान भी है । ऐसा न कर सको तो घर में ही १०८ बार 'हरि' का नाम लेकर स्नान कर लो । फिर मिट्टी या ताँबे के कलश की स्थापना करके उसके पास अष्टदल कमल बनाकर उन दलों में सप्तर्षियों व वसिष्ठपत्नी अरुंधती

का आवाहन कर विधिपूर्वक उनका पूजन-अर्चन करें। फिर कश्यप, अत्रि, भरद्वाज, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि व वसिष्ठ इन सप्तर्षियों को प्रणाम करके प्रार्थना करें कि 'हमसे कायिक, वाचिक व मानसिक जो भी भूलें हो गयी हैं, उन्हें क्षमा करना। आज के बाद हमारा जीवन ईश्वर के मार्ग पर शीघ्रता से आगे बढ़े, ऐसी कृपा करना।' तुम्हारी अहंता, ममता ऋषिचरणों में अर्पित हो जाय, यही इस व्रत का ध्येय है।

इस दिन हल से जुते हुए खेत का अन्न, खैर अब तो ट्रैक्टर है; मिर्च-मसाले, नमक, घी, तेल, गुड़ वगैरह का सेवन त्याज्य है। दिन में केवल एक बार भोजन करें। इस दिन लाल वस्त्र दान करने का विधान है।

हमारे महान ऋषियों ने पुरुष जाति के साथ ही स्त्री जाति के कल्याण का भी ख्याल किया है। स्त्री जाति पर आती आपत्तियों को हटाने के लिए उन्होंने स्वयं के मान-अपमान तक की परवाह नहीं की। जैसे, मतंग ऋषि ने शबरी भीलन को सहारा देकर उसको भक्ति जगत के पवित्र इतिहास में ऊँचा स्थान दिलाया, देवर्षि नारदजी ने हिरण्यकशिपु की पत्नी कयाधू को आश्रम में रखके उपदेश देकर महान भक्त प्रह्लाद का प्राकट्य कराया। अग्नि-परीक्षा के बाद भी लोगों ने जिन सीताजी पर उँगली उठाना न छोड़ा, धोबी द्वारा जिन पर कलंक लगाया गया, ऐसी माता सीता को जब लोकापवाद के कारण वनवास जाना पड़ा, तब उन्हें सहारा देनेवाले वाल्मीकि ऋषि ही थे। उन्होंने माता सीता को आश्रय तो दिया ही, साथ-ही-साथ लव-कुश को भी महान विद्याएँ सिखाकर तेजस्वी बनाया।

जिन ऋषियों ने पुरुषों के जीवन को महान बनाया, जिन ऋषियों ने नारी जाति का गौरव बढ़ाने में सहयोग दिया, अनेक नारियों को महान बनाया, ऐसे समस्त ऋषियों की हम वंदना करते हैं। सुज्ञ समाज उनका ऋणी है।

हमने
देश के लिए क्या किया ?

इसी धरती से हमने अन्न, जल और ये जीवन पाया।
इसी भूमि से मिली स्नेह और ममता की शीतल छाया।
इन अनंत उपकारों के बदले हमने मातृभूमि को क्या दिया ?
क्या कभी ये भी सोचा कि हमने देश के लिए क्या किया ?

साम्यवाद और धर्म-निरपेक्षता की दुहाई देकर,
हमारे धर्म और संस्कृति पर कुठाराघात किया जा रहा है।
कहने को हम आजाद हैं किंतु मन से उन्हीं के गुलाम हैं।
सब कुछ जानकर भी हमने सच्चाई से मुँह फिरा लिया।
क्या कभी ये भी सोचा कि हमने देश के लिए क्या किया ?

कुछ गद्दार जिस थाली में खाते हैं उसीमें छेद करते हैं,
अपने देश में रहकर अपने ही धर्म की निंदा करते हैं।
इस देश से मिली हमारे अस्तित्व को पहचान,
और हमने इसीके मुख पर कालिख पोत दिया।
क्या कभी ये भी सोचा कि हमने देश के लिए क्या किया ?

किसी दुःखी लाचार को देखकर क्या हमारा दिल दुखता है ?
कभी किसी जरूरतमंद की मदद करने को हाथ उठता है ?
बुजुर्गों और संतजनों के समक्ष आदर से शीश झुकता है ?
अपने धार्मिक और सांस्कृतिक मूल्यों को हमने ही भुला दिया,
फिर भी निर्लज्ज होकर पूछते हैं कि देश ने हमें क्या दिया ?

मानसिक गुलामी की बेड़ियों से
देश को यदि आजाद करा पायें,
अपनी मातृभूमि को उसका
खोया हुआ गौरव फिर दिला पायें,
भारत को विश्वगुरु के पद पर
प्रतिष्ठित यदि हम कर पायें,
तब तो यह कहना ही न होगा कि
देश ने हमें क्या दिया ?
अभी तो बस यही सोचना है कि
हमने देश के लिए क्या किया ?

– जानकीजी

नौ योगीश्वरों के उपदेश

(गतांक से आगे)

कभी-कभी वे इस प्रकार चिंता करने लगते हैं कि अब तक भगवान नहीं मिले, क्या करूँ, कहाँ जाऊँ, किसे पूछूँ, कौन मुझे उनकी प्राप्ति करावे ? इस तरह सोचते-सोचते वे रोने लगते हैं तो कभी भगवान की लीला की स्फूर्ति हो जाने से ऐसा देखकर कि परमैश्वर्यशाली भगवान गोपियों के डर से छिपे हुए हैं, खिलखिलाकर हँसने लगते हैं । कभी-कभी उनके प्रेम और दर्शन की अनुभूति से आनंदमग्न हो जाते हैं तो कभी लोकातीत भाव में स्थित होकर भगवान के साथ बातचीत करने लगते हैं । कभी मानों उन्हें सुना रहे हों, इस प्रकार उनके गुणों का गान छेड़ देते हैं और कभी नाच-नाचकर उन्हें रिझाने लगते हैं । कभी-कभी उन्हें अपने पास न पाकर इधर-उधर ढूँढ़ने लगते हैं तो कभी-कभी उनसे एक होकर, उनकी सन्निधि में स्थित होकर परम शांति का अनुभव करते और चुप हो जाते हैं । राजन् ! जो इस प्रकार भागवत धर्मों की शिक्षा ग्रहण करता है, उसे उनके द्वारा प्रेम-भक्ति की प्राप्ति हो जाती है और वह भगवान नारायण के परायण होकर उस माया को अनायास ही पार कर जाता है, जिसके पंजे से निकलना बहुत ही कठिन है।

राजा निमि ने पूछा : महर्षियो ! आप लोग परमात्मा का वास्तविक स्वरूप जाननेवालों में सर्वश्रेष्ठ हैं । इसलिए मुझे यह बतलाइये कि जिस परब्रह्म परमात्मा का 'नारायण' नाम से वर्णन किया जाता है, उनका स्वरूप क्या है ?

अब पाँचवें योगीश्वर पिप्पलायनजी ने कहा : राजन् ! जो इस संसार की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का निमित्त-कारण व उपादान-कारण दोनों ही है, बननेवाला भी तथा बनानेवाला भी परंतु स्वयं कारणरहित है, जो स्वप्न, जाग्रत और सुषुप्ति अवस्थाओं में उनके साक्षी के रूप में विद्यमान रहता है और उनके अतिरिक्त समाधि में भी ज्यों-का-त्यों एकरस रहता है, जिसकी सत्ता से ही सत्तावान होकर शरीर, इन्द्रिय, प्राण और अन्तःकरण अपना-अपना काम करने में समर्थ होते हैं, उसी परम सत्य वस्तु को आप 'नारायण' समझिये । जैसे चिनगारियाँ न तो अग्नि को प्रकाशित ही कर सकती हैं और न जला ही सकती हैं, वैसे ही उस परम तत्त्व में-आत्मस्वरूप में न तो मन की गति है और न वाणी की, नेत्र उसे देख नहीं सकते और बुद्धि सोच नहीं सकती, प्राण तथा इन्द्रियाँ तो उसके पास तक नहीं फटक पातीं । 'नेति-नेति' इत्यादि श्रुतियों के शब्द भी 'वह यह है' - इस रूप में उसका वर्णन नहीं करते, बल्कि उसको बोध करानेवाले जितने भी साधन हैं, उनका निषेध करके तात्पर्यरूप से अपना मूल - निषेध का मूल लक्षित करा देते हैं, क्योंकि यदि निषेध के आधार की, आत्मा की सत्ता न हो तो निषेध कौन कर रहा है, निषेध की वृत्ति किसमें है - इन प्रश्नों का कोई उत्तर ही न रहे, निषेध की ही सिद्धि न हो । जब सृष्टि नहीं थी तब केवल एक वही था । सृष्टि का निरूपण करने के लिए उसीको त्रिगुण (सत्त्व-रज-तम) मयी प्रकृति कहकर वर्णन किया गया । फिर उसीको ज्ञानप्रधान होने से महत्तत्त्व, क्रियाप्रधान होने से सूत्रात्मा और जीव की उपाधि होने से अहंकार के रूप में वर्णन किया गया । वास्तव में जितनी भी शक्तियाँ हैं चाहे वे इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवताओं के रूप में हों, चाहे इन्द्रियों के, उनके विषयों के अथवा विषयों के प्रकाश के रूप में हों - सब-का-सब वह ब्रह्म ही है, क्योंकि ब्रह्म की शक्ति अनंत है । कहाँ तक कहूँ ? **(क्रमशः)**
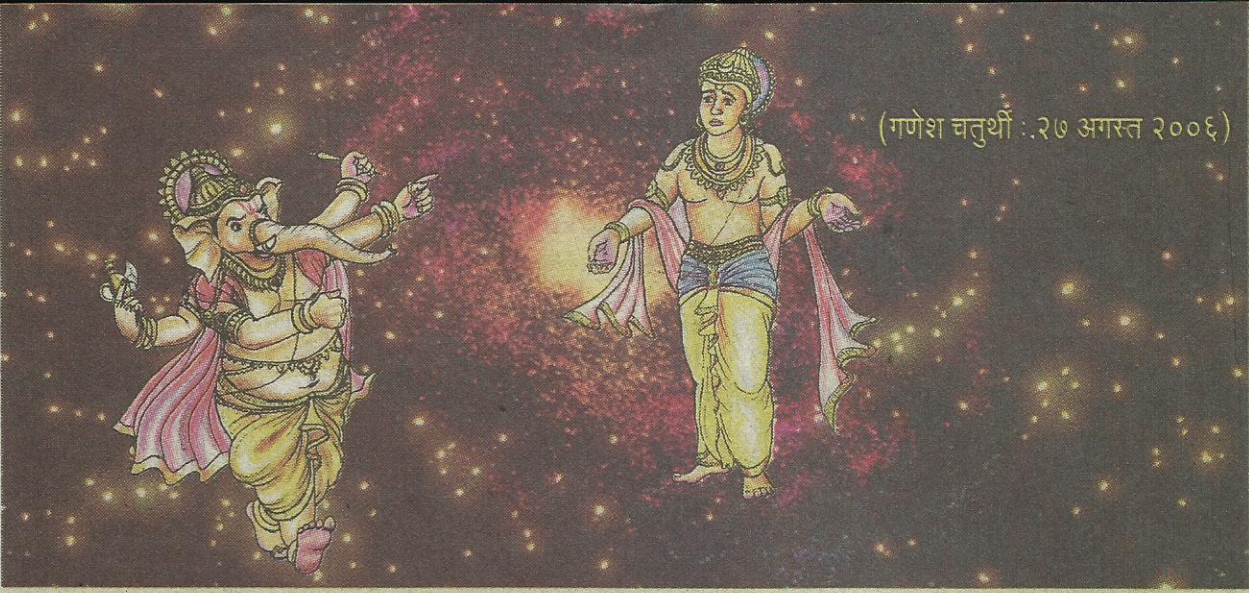
शास्त्रों की बातें १००% सत्य

● बापूजी के सत्संग-प्रवचन से

एक बार गणपतिजी अपने मौजीले स्वभाव से आ रहे थे । वह दिन था चौथ का । चंद्रमा ने उन्हें देखा । चंद्र को अपने रूप, लावण्य, सौंदर्य का अहंकार था । उसने गणपतिजी का मजाक उड़ाते हुए कहा : ''क्या रूप बनाया है ! लम्बा पेट है, हाथी का सिर है...'' आदि कह के व्यंग्य कसा तो गणपतिजी ने देखा कि दंड के बिना इसका अहं नहीं जायेगा ।

गणपतिजी बोले : ''जा, तू किसीको मुँह दिखाने के लायक नहीं रहेगा ।''

फिर तो चंद्रमा उगे नहीं । देवता चिंतित हुए कि पृथ्वी को सींचनेवाला पूरा विभाग गायब ! अब औषधियाँ पुष्ट कैसे होंगी, जगत का व्यवहार कैसे चलेगा ?...

ब्रह्माजी ने कहा : ''चंद्रमा की उच्छृंखलता के कारण गणपतिजी नाराज हो गये हैं ।''

गणपतिजी प्रसन्न हों इसलिए अर्चना-पूजा की गयी । गणपतिजी जब थोड़े सौम्य हुए तब चंद्रमा मुँह दिखाने के काबिल हुआ । चंद्रमा ने गणपति भगवान की स्तोत्र-पाठ द्वारा स्तुति की । तब गणपतिजी ने कहा :

''वर्ष के और दिन तो तुम मुँह दिखाने के काबिल रहोगे लेकिन भाद्रपद के शुक्लपक्ष की चौथ के दिन तुमने मजाक किया था तो इस दिन अगर तुमको कोई देखेगा तो जैसे तुम मेरा मजाक उड़ाकर मेरे पर कलंक लगा रहे थे, ऐसे ही तुम्हारे दर्शन करनेवाले पर वर्ष भर में कोई भारी कलंक लगेगा ताकि लोगों को पता चले कि

रूप दिसी मगरूर न थीउ
एदो हुसन ते नाज न कर ।

रूप और सौंदर्य का अहंकार मत करो । देवतागणों का स्वामी, इन्द्रियों का स्वामी आत्मदेव है । तू मुझ आत्मा में रमण करनेवाले पुरुष के दोष देखकर मजाक उड़ाता है । तू अपने बाहर के सौंदर्य को देखता है । तेरा बाहर का सौंदर्य जिस सच्चे सौंदर्य से आता है उस आत्म-परमात्म देव मुझको तो तू जानता नहीं है । वही नारायण-रूप में है, वही गणपति-रूप में है, वही शिव-रूप में है और प्राणी-रूप में भी वही है । हे चंद्र ! तेरा भी असली स्वरूप वही है, तू बाहर के सौंदर्य का अहंकार मत कर ।''

भगवान श्रीकृष्ण जैसे ने चौथ का चाँद देखा तो उन पर स्यमंतक मणि चुराने का कलंक लगा था । यहाँ तक कि बलराम ने भी कलंक लगा दिया था, हालाँकि भगवान श्रीकृष्ण ने मणि चुरायी नहीं थी ।

जो लोग बोलते हैं कि 'वह कथा हम नहीं मानते । शास्त्र-वास्त्र हम नहीं मानते ।' तो आजमा के देख ले भैया ! भाद्रपद शुक्ल चौथ के चंद्रमा के दर्शन कर ले । फिर देख, कथा-सत्संग को नहीं मानता तो पता चल जायेगा, प्रतिष्ठा को धूल में मिला दे ऐसा कलंक लगेगा वर्ष भर में ।

ज्ञानवान महापुरुष को मनुष्यरूप में मानना अपराध है ।

आप सावधान हो जाना । 'नहीं देखना है, नहीं देखना है, नहीं देखना है' कर के भी दिख जाता है । ऐसा कई बार हुआ हम लोगों से । एक बार लंदन में दिख गया, फिर हम हिंदुस्तान आये तो हमारे लिए न जाने क्या-क्या चला । फिर एक-दो साल बीते । फिर दिख गया तो क्या-क्या चला । अगले साल नहीं देखा तो उस साल ऐसी कुछ खास गड़बड़ नहीं हुई । फिर इस साल देखेंगे तो ऐसा कुछ होगा... लेकिन हम तो आदी हो गये, हमारे कंधे मजबूत हो गये ।

एक बार घाटवाले बाबा ने मुझसे पूछा : ''भाई ! चौथ का चंद्रमा देखने से कलंक लगता है - ऐसा लिखा है ।''

मैंने कहा : ''हाँ ।''

''श्रीकृष्ण को भी लगा था ?''

''हाँ ।''

''हमने तो देख लिया ।''

''आपने देखा तो आपको कुछ नहीं हुआ ?''

''मेरे को तो कुछ नहीं हुआ ।''

''कितना समय हो गया ?''

''वर्ष पूरा हो गया । अगले साल देखा था, मेरे को तो कुछ नहीं हुआ ।''

''कुछ नहीं हुआ तो शास्त्र झूठा है ?''

''नहीं, मेरे को तो कुछ नहीं हुआ पर लोगों ने हरिद्वार की दीवारों पर लिख दिया 'घाटवाला बाबा रंडीबाज है ।' लोगों ने लिख दिया और लोगों ने पढ़ा, मेरे को तो कुछ नहीं हुआ ।''

अब ब्रह्मज्ञानी संत को तो क्या होगा बाबा !

यदि भूल से भी चौथ का चंद्रमा दिख जाय तो 'श्रीमद्भागवत' के १०वें स्कंध, ५६-५७वें अध्याय में दी गयी 'स्यमंतक मणि की चोरी' की कथा का आदरपूर्वक श्रवण करना । भाद्रपद शुक्ल तृतीया या पंचमी के चंद्रमा के दर्शन कर लेना, इससे चौथ को दर्शन हो गये हों तो उसका ज्यादा खतरा नहीं होगा ।

भाद्रपद के शुक्लपक्ष की चतुर्थी २७ अगस्त को है । चंद्रास्त रात्रि ९-०३ बजे होगा । इस समय तक चंद्र-दर्शन न हों इसकी सावधानी रखें ।

गणेश चतुर्थी के दिन **'ॐ गं गणपतये नमः'** का जप करने और गुड़मिश्रित जल से श्री गणेशजी को स्नान कराने एवं दुर्वा व सिंदूर की आहुति देने से विघ्न-निवारण होता है तथा मेधाशक्ति बढ़ती है ।

अनिच्छा से चंद्र-दर्शन हो जाये तो...

उसे निम्न मंत्र से पवित्र किया हुआ जल पीना चाहिए । मंत्र का २१, ५४ या १०८ बार जप करें । ऐसा करने से वह तत्काल शुद्ध हो निष्कलंक बना रहता है । मंत्र इस प्रकार है :

सिंहः प्रसेनमवधीत्
सिंहो जाम्बवता हतः ।
सुकुमारक मा रोदीस्तव
ह्येष स्यमन्तकः ।।

'सुंदर सलोने कुमार ! इस मणि के लिए सिंह ने प्रसेन को मारा है और जाम्बवान ने उस सिंह का संहार किया है, अतः तुम रोओ मत । अब इस स्यमंतक मणि पर तुम्हारा ही अधिकार है ।'

(ब्रह्मवैवर्त पुराण, अध्याय : ७८)

थोड़ी-सी सावधानी, न होगी हानि

* झाड़ू और पोंछा ऐसी जगह पर नहीं रखने चाहिए कि बार-बार नजरों में आयें। भोजन के समय भी यथासंभव न दिखें, ऐसी सावधानी रखें।
* घर में सकारात्मक ऊर्जा बढ़ाने के लिए रोज पोंछा लगाते समय पानी में थोड़ा नमक मिलायें। इससे नकारात्मक ऊर्जा का प्रभाव घटता है। एक-डेढ़ रुपया किलो खड़ा-मोटा नमक मिलता है, उसका उपयोग कर सकते हैं ।
* कार्यालयीन कामकाज, अध्ययन आदि के लिए बैठने का स्थान छत की बीम के नीचे नहीं होना चाहिए क्योंकि इससे थोड़ा मानसिक दबाव रहता है।
* बीम के नीचेवाले स्थान में भोजन बनाना एवं करना नहीं चाहिए। इससे आर्थिक हानि हो सकती है। बीम के नीचे सोने से स्वास्थ्य में गड़बड़ होती है तथा नींद ठीक से नहीं आती।

संकल्पशक्ति का विकास कैसे करें ?

सभी परिस्थितियों का सदुपयोग करें । प्रत्येक स्थान व अवस्था में अपनेको प्रसन्न रखने का स्वभाव बनायें । इससे आपके व्यक्तित्व में बल और तेज उतरेगा ।

जो व्यक्ति मन को सदा संतुलित रखता है तथा जिसका संकल्प तेजस्वी है, वह सभी कार्यों में आशातीत सफलता प्राप्त करेगा ।

संकल्प का शुद्ध और अप्रतिहत (अखंडित) अभ्यास किया जाय तो अद्‌भुत कार्य भी सिद्ध किये जा सकते हैं । बलवती इच्छावाले व्यक्ति के लिए इस संसार में कुछ भी असंभव नहीं है । वासना से संकल्प अशुद्ध और निर्बल हो जाता है । इच्छाओं को वश में करने से संकल्पशक्ति बढ़ती है । इच्छाएँ जितनी कम हों संकल्प उतना ही बलवान होता है । मनुष्य के भीतर कई प्रकार की मानसिक शक्तियाँ हैं; जैसे- धारणाशक्ति, विवेकशक्ति, अनुमान-शक्ति, मनःशक्ति, स्मृतिशक्ति, प्रज्ञाशक्ति आदि । ये सभी संकल्पशक्ति के विकसित होने पर पलक मारते ही काम करने लग जाती हैं ।

ध्यान का नियमित अभ्यास, सहिष्णुता, विपत्तियों में धैर्य, तपस्या, प्रकृति-विजय, तितिक्षा, दृढ़ता तथा सत्याग्रह और घृणा, अप्रसन्नता व चिड़चिड़ाहट का दमन - ये सब संकल्प के विकास को सुगम बनाते हैं । धैर्यपूर्वक सबकी बातें सुननी चाहिए । इससे संकल्प का विकास होता है तथा दूसरों के हृदय को जीता जा सकता है ।

विषम परिस्थितियों की शिकायत कभी न करें । जहाँ कहीं आप रहें और जहाँ कहीं आप जायें, अपने लिए अनुकूल मानसिक जगत का निर्माण करें । सुख और सुविधाओं के उपलब्ध होने से आप मजबूत नहीं बन सकते । विषम और अनुपयुक्त वातावरण से भागने का प्रयत्न न करें । भगवान ने आपकी त्वरित उन्नति के लिए ही आपको वहाँ रखा है । अतः सभी परिस्थितियों का सदुपयोग करें । किसी भी वस्तु से अपने मन को उद्विग्न न होने दें । इससे आपकी संकल्पशक्ति का विकास होगा । प्रत्येक स्थान व अवस्था में अपनेको प्रसन्न रखने का स्वभाव बनायें । इससे आपके व्यक्तित्व में बल और तेज उतरेगा ।

मन की एकाग्रता का अभ्यास संकल्प की उन्नति में सहायक है । मन का क्या स्वभाव है - इसका अच्छी तरह से ज्ञान प्राप्त कर लें । मन किस तरह इधर-उधर घूमता है और किस प्रकार अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता है - यह सब भली-भाँति हृदयंगम कर लें । मन के चलायमान स्वभाव को वश में करने के लिए आसान और प्रभावकारी तरीके खोज लें । व्यर्थ की बातचीत सदा के लिए त्याग दें । सभीको समय के मूल्य का ज्ञान होना चाहिए । संकल्प में तेज तभी निखरेगा, जब समय का उचित उपयोग किया जाय । व्यवहार और दृढ़ता, लगन व ध्यान, धैर्य तथा अप्रतिहत प्रयत्न, विश्वास और स्वावलम्बन आपको अपने सभी प्रयासों में सफलता प्राप्त करायेंगे ।

आपको अपने संकल्पों का व्यवहार योग्यतानुसार करना चाहिए, अन्यथा संकल्प क्षीण हो जायेगा, आप हतोत्साहित हो जायेंगे । अपना दैनिक नियम अथवा कार्य-व्यवस्था अपनी योग्यता के अनुसार बना लें और उसका सम्पादन नित्य सावधानी से करें । अपने

मन में अथाह शक्ति है । एकाग्र होकर मन जैसा दृढ़ निश्चय करे वैसा ही हो जाता है । मन अथाह शक्ति कहाँ से लाया ? परमात्मा से । जैसे सरोवर और उसकी तरंग, टॉर्च और उसका प्रकाश, सूर्य और उसकी किरण, ऐसे ही परमात्मा और मन ।

कार्यक्रम में पहले-पहल कुछ ही विषयों को सम्मिलित करें । यदि आप अपने कार्यक्रम को अनेकों विषयों से भर देंगे तो न उसे निभा सकेंगे और न लगन के साथ दिलचस्पी ही ले सकेंगे । आपका उत्साह क्षीण होता जायेगा । शक्ति तितर-बितर हो जायेगी । अतः आपने जो कुछ करने का निश्चय किया है, उसका अक्षरशः पालन प्रतिदिन करें ।

विचारों की अधिकता संकल्पित कार्यों में बाधा पहुँचाती है । इससे भ्रान्ति, संशय और दीर्घसूत्रता का उदय होता है । संकल्प की तेजस्विता में ढीलापन आ जाता है । अतः यह आवश्यक है कि कुछ समय के लिए विचार करें फिर निर्णय करें । इसमें अनावश्यक विलम्ब न करें । कभी-कभी सोचते तो हैं पर कर नहीं पाते । उचित विचार और अनुभवों के अभाव में ही यह हुआ करता है । अतः उचित रीति से सोचना चाहिए और उचित निर्णय ही करना चाहिए, तब संकल्प की सफलता अनिवार्य है । किंतु केवल संकल्प ही किसी वस्तु की प्राप्ति में सफल नहीं होता । संकल्प के साथ निश्चित उद्देश्य को भी जोड़ना होगा । इच्छा या कामना तो मानस-सरोवर में एक छोटी लहर-सी है परंतु संकल्प वह शक्ति है जो इच्छा को कार्यरूप में परिणत कर देती है । संकल्प निश्चय करने की शक्ति है ।

जो मनुष्य संकल्प-विकास की चेष्टा कर रहा है, उसे सदा मस्तिष्क को शांत रखना चाहिए । सभी परिस्थितियों में अपने मन का संतुलन कायम रखना चाहिए । मन को शिक्षित तथा अनुशासित बनाना चाहिए । जो व्यक्ति मन को सदा संतुलित रखता है तथा जिसका संकल्प तेजस्वी है, वह सभी कार्यों में आशातीत सफलता प्राप्त करेगा ।

अनुद्विग्न मन, समभाव, प्रसन्नता, आन्तरिक बल, कार्य-सम्पादन की क्षमता, प्रभावक व्यक्तित्व, सभी उद्योगों में सफलता, ओजपूर्ण मुखमंडल, निर्भयता आदि लक्षणों से पता चलता है कि संकल्पोन्नति हो रही है ।

'तुलसी-दल के सिवा मेरा कोई दल नहीं'

एक बार माघ मेले के अवसर पर मदनमोहन मालवीयजी 'सनातन धर्म महासभा' के सम्मेलन में भाषण दे रहे थे । विरोधी दल के कुछ लोग वहाँ आये और सम्मेलन भंग करने के उद्देश्य से शोरगुल मचाने लगे । तब उनके एक प्रवक्ता को मालवीयजी ने बोलने के लिए आमंत्रित किया । उस प्रवक्ता ने मालवीयजी पर दलबंदी करने का आरोप लगाया । उसके उत्तर में मालवीयजी ने कहा : ''मैंने अपने समस्त जीवन में दल तो केवल एक ही जाना है । वह दल ही मेरा जीवन-प्राण है और जीवन रहते उस दल को मैं कभी छोड़ भी नहीं सकता । उस दल के अतिरिक्त किसी दूसरे दल से मुझे कोई मतलब नहीं ।''

यह कहकर उन्होंने अपनी जेब से एक छोटा-सा दल निकाला और उसे जनता को दिखलाते हुए कहा : ''और वह दल है यह तुलसी-दल !'' हर्षध्वनि और 'मालवीयजी की जय !' के नारों से सारा पंडाल गूँज उठा तथा प्रतिपक्षी अपना-सा मुँह लेकर वापस लौट गये । इतने उदार, सत्यनिष्ठ सज्जन को भी प्रतिपक्षी-द्वेषी लोगों ने बदनाम करने में कमी नहीं रखी । इस लौहपुरुष से द्वेष करनेवाले तो पचते रहे परंतु वे सत्संग और स्नेह रस से सराबोर रहे ।

मदनमोहन मालवीयजी

माता-पिता व गुरुजनों की महत्ता

युधिष्ठिर ने पूछा : ''पितामह ! धर्म का रास्ता बहुत बड़ा है और उसकी अनेकों शाखाएँ हैं । इनमें से किस धर्म को आप सबसे प्रधान एवं विशेषरूप से आचरण में लाने योग्य समझते हैं, जिसका अनुष्ठान कर के मैं इहलोक और परलोक में भी धर्म का फल पा सकूँगा ।''

भीष्मजी ने कहा :

मातापित्रोर्गुरूणां च पूजा बहुमता मम ।
इह युक्तो नरो लोकान् यशश्च महदश्नुते ॥

'राजन् ! मुझे तो माता-पिता तथा गुरुजनों की पूजा ही अधिक महत्त्व की वस्तु जान पड़ती है । इस लोक में इस पुण्यकार्य में संलग्न होकर मनुष्य महान यश और श्रेष्ठ लोक पाता है ।'

(महाभारत, शांति पर्व : १०८.३)

राजन् ! माता, पिता और गुरुजन जिस काम के लिए आज्ञा दें, उसका पालन करना ही चाहिए । इन तीनों की आज्ञा का कभी उल्लंघन न करे । जिस काम के लिए उनकी आज्ञा हो, वह धर्म ही है, ऐसा निश्चय रखना चाहिए ।

माता, पिता और गुरु - ये ही तीनों लोक हैं, ये ही तीनों आश्रम हैं, ये ही तीनों वेद हैं और ये ही तीनों अग्नियाँ हैं । पिता गार्हपत्य अग्नि, माता दक्षिणाग्नि और गुरु आहवनीयाग्नि हैं । लौकिक अग्नियों से माता, पिता व गुरु, इन त्रिविध अग्नियों का गौरव अधिक है । इन तीनों की सेवा में यदि भूल न करोगे तो तुम तीनों लोकों को जीत लोगे । पिता की सेवा से इस लोक को, माता की सेवा से परलोक को तथा नियमपूर्वक गुरु की सेवा से ब्रह्मलोक को भी लाँघ जाओगे, इसलिए तुम इनके साथ सदैव अच्छा बर्ताव करो । ऐसा करने से तुम्हें उत्तम यश, परम कल्याण और महान फल देनेवाले धर्म की प्राप्ति होगी ।

इनको भोजन कराने से पहले स्वयं भोजन न करना । इन पर कभी भी कोई दोषारोपण न करना और सदा इनकी सेवा में संलग्न रहना - यही सबसे उत्तम पुण्य है । इनकी सेवा से तुम कीर्ति, पवित्र यश और उत्तम लोक सब कुछ प्राप्त कर लोगे ।

सर्वेतस्यादृता लोका यस्यैते त्रय आदृताः ।
अनादृतास्तु यस्यैते सर्वास्तस्याफलाः क्रियाः ॥

'जिसने इन तीनों का आदर कर लिया, उसके द्वारा सम्पूर्ण लोकों का आदर हो गया और जिसने इनका अनादर कर दिया, उसके सम्पूर्ण शुभ कर्म निष्फल हो जाते हैं ।' **(महाभारत, शांति पर्व : १०८.१२)**

जिसने इन तीनों गुरुजनों का सम्मान नहीं किया, उसके लिए न यह लोक है न परलोक । उसे न इस लोक में यश मिलता है न परलोक में सुख । मैं तो सब तरह के शुभ कर्मों का अनुष्ठान करके इन गुरुजनों को ही अर्पण कर देता था । इससे उन कर्मों का पुण्य सौ गुना और हजार गुना बढ़ गया है तथा उसीका यह फल है कि आज तीनों लोक मेरी दृष्टि के सामने हैं ।

दस श्रोत्रियों से बढ़कर है आचार्य (कुलगुरु), दस आचार्यों से बड़ा है उपाध्याय (विद्यागुरु), दस उपाध्यायों से अधिक महत्त्व रखता है पिता और दस पिताओं से भी अधिक गौरव है माता का । माता का गौरव तो सारी पृथ्वी से भी बढ़कर है । उसके समान गौरव किसीका नहीं है । मगर मेरा विश्वास ऐसा है कि आत्मतत्त्व का उपदेश देनेवाले गुरु का दर्जा माता-पिता से भी
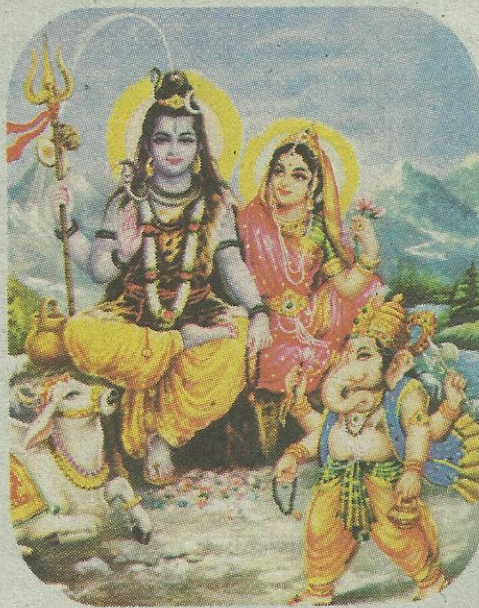
व्यवहार जगत के पदार्थों से करो लेकिन
प्रीति भगवान से करो ।

बढ़कर है । माता-पिता तो केवल इस शरीर को जन्म देते हैं किंतु आत्मतत्त्व का उपदेश देनेवाले आचार्य द्वारा जो जन्म होता है, वह दिव्य है, अजर-अमर है ।

माता-पिता यदि कोई अपराध करें तो भी उन पर कभी हाथ नहीं उठाना चाहिए ।

यश्चावृणोत्यवितथेन कर्मणा
ऋतं ब्रुवन्ननृतं सम्प्रयच्छन् ।
तं वै मन्येत पितरं मातरं च
तस्मै न द्रुह्येत् कृतमस्य जानन् ॥

'जो सत्यकर्म (के द्वारा और यथार्थ उपदेश) के द्वारा पुत्र या शिष्य को कवच की भाँति ढक लेता है, सत्यस्वरूप वेद का उपदेश देता है और असत्य की रोकथाम करता है, उस गुरु को ही पिता और माता समझे और उसके उपकार को जानकर कभी उससे द्रोह न करे ।'

(महाभारत, शांति पर्व : १०८.२२)

जो लोग विद्या पढ़कर गुरु का आदर नहीं करते, निकट रहते हुए भी मन, वाणी अथवा क्रिया द्वारा गुरु की सेवा नहीं करते, उन्हें गर्भस्थ बालक की हत्या से भी बढ़कर पाप लगता है । संसार में उनसे बढ़कर पापी दूसरा कोई नहीं है । जैसे गुरुओं का कर्तव्य है शिष्यों को आत्मोन्नति के पथ पर पहुँचाना, उसी तरह शिष्यों का धर्म है गुरुओं का पूजन करना ।

मनुष्य जिस धर्म से पिता को प्रसन्न करता है, उसीके द्वारा प्रजापति ब्रह्माजी भी प्रसन्न होते हैं तथा जिस बर्ताव से वह माता को प्रसन्न कर लेता है, उसीके द्वारा सम्पूर्ण पृथ्वी की पूजा हो जाती है । परंतु जिस व्यवहार से शिष्य अपने गुरु को प्रसन्न कर लेता है, उसके द्वारा परब्रह्म परमात्मा की पूजा सम्पन्न होती है, इसलिए गुरु माता-पिता से भी अधिक पूजनीय हैं । गुरुओं के पूजित होने पर पितरों सहित देवता और ऋषि भी प्रसन्न होते हैं, इसलिए गुरु परम पूजनीय हैं ।

जो लोग मन, वाणी और क्रिया द्वारा गुरु, पिता व माता से द्रोह करते हैं, उन्हें गर्भहत्या का पाप लगता है, जगत में उनसे बढ़कर और कोई पापी नहीं है । मित्रद्रोही, कृतघ्न, स्त्री-हत्यारा और गुरुघाती- इन चारों के पाप का प्रायश्चित्त हमारे सुनने में नहीं आया है ।

माता-पिता तो केवल इस शरीर को जन्म देते हैं किंतु आत्मतत्त्व का उपदेश देनेवाले आचार्य द्वारा जो जन्म होता है, वह दिव्य है, अजर-अमर है ।

अतः माता, पिता और गुरु की सेवा ही मनुष्य के लिए परम कल्याणकारी मार्ग है । इससे बढ़कर दूसरा कोई कर्तव्य नहीं है । सम्पूर्ण धर्मों का अनुसरण करके यहाँ सबका सार बताया गया है ।

('महाभारत' के शांति पर्व से)

क्या अपना कल्याण चाहनेवाले आज के युवक-युवतियाँ भीष्मजी के ये शास्त्र-सम्मत वचन बार-बार विचारकर अपना कल्याण नहीं करेंगे ? 'गर्भ-हत्यारों की कतार में आना है या श्रेष्ठ पुरुष बनना है ?'- ऐसा अपने-आपसे पूछा करो । अभी भी समय है, चेत जाओ ! समय है भैया !... सावधान !!...

❊ अपने से उम्र में, ज्ञान में बड़े व्यक्ति को 'आप' कहकर संबोधित करें ।
❊ सुनें अधिक, बोलें बहुत कम । बोलें तो सत्य, हितकारी, प्रिय और मधुर वचन बोलें ।
❊ 'सादा जीवन, उच्च विचार' उन्नत जीवन का एक साधन है ।
❊ किसीकी निंदा न करें न सुनें, किसीकी हँसी न उड़ायें ।
❊ स्वच्छता-प्रेमी व स्वावलम्बी बनें ।

(आश्रम की पुस्तक 'संस्कार दर्शन' से)
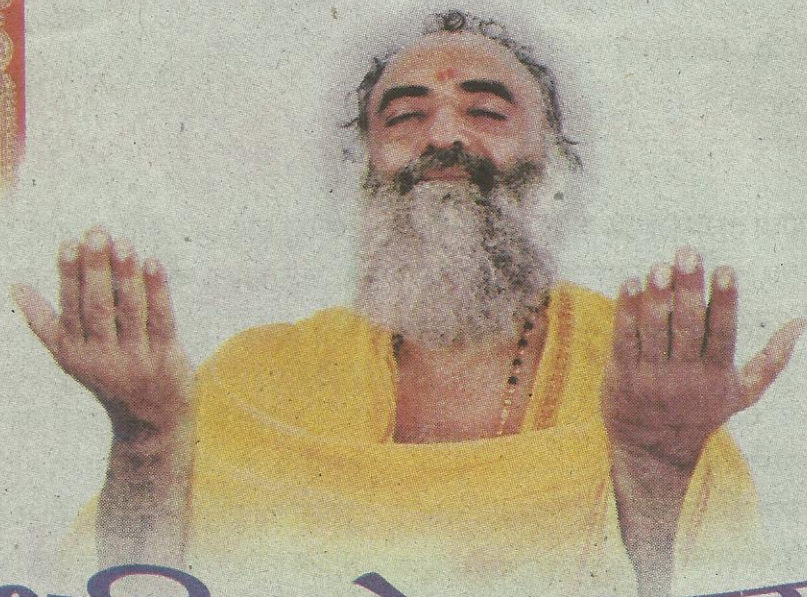
भक्ति के प्रकार

● बापूजी के सत्संग-प्रवचन से

'पद्म पुराण' में वर्णन आता है कि एक बार देवर्षि नारदजी विचरण करते-करते भगवद्भक्त राजा अम्बरीष की पुण्यमयी नगरी मथुरा जा पहुँचे । जहाँ हरियाली वहाँ बादल, जहाँ बादल वहाँ हरियाली, ऐसे ही जहाँ भक्त वहाँ संत, जहाँ संत वहाँ भक्त । अम्बरीष ने देवर्षि नारदजी का अर्घ्य-पाद्य से भलीप्रकार पूजन किया । जलपान कराने के बाद महामहिम, महाबुद्धिमान अम्बरीष देवर्षि नारदजी से बोले : ''प्रभु ! आज्ञा दें तो मैं प्रश्न करूँ ।''

''पूछिये राजन् !''

''प्रभु ! भक्ति कितने प्रकार की होती है ?''

नारदजी बड़े प्रसन्न हुए । बोले : ''राजन् ! संतों को सम्मान देना आपका स्वभाव है । आप भगवान के प्रिय भक्त हैं और मुझसे पूछते हैं कि भगवान की भक्ति कितने प्रकार की होती है ? भक्तहृदय राजा अम्बरीष ! यह प्रश्न पूछकर आपने मेरे चित्त को भगवद्रस का भोजन ही दे दिया है । जलपान से तो शरीर की सेवा हो गयी लेकिन यह प्रश्न पूछकर आपने मेरी सेवा कर ली । जहाँ भगवत्संबंधी प्रश्न-उत्तर होते हैं वहाँ का माहौल बड़ा पावन होता है !

आपने प्रश्न किया है तो मैं उत्तर देकर अपनी जिह्वा और मन पावन करता हूँ । भगवान की भक्ति अनेकों प्रकार की बतायी गयी है :

१. मानसी भक्ति : ध्यान के पहले भगवान को बार-बार देखा जाता है जिससे धारणा होती है और 'भगवान सत् हैं, चित् हैं, आनंदस्वरूप हैं' - यह वेद का अर्थ बुद्धि में बिठाया जाता है । वेदार्थ अपनी बुद्धि में बिठाकर भगवान को अपना मानकर साकार, निराकार-अंतरात्मा रूप का ध्यान किया जाता है । इसे 'मानसी भक्ति' कहते हैं ।

२. वाचिकी भक्ति : वेदमंत्रों का उच्चारण, गुरुमंत्र का जप, भगवन्नाम-जप, वेदों का पाठ, आरण्यक पाठ आदि 'वाचिकी भक्ति' में आते हैं।

३. कायिकी भक्ति : नियम-पालन, इन्द्रिय-संयम, व्रत, उपवास जैसे - पूनम का व्रत, एकादशी का व्रत जो पापनाशिनी शक्ति देता है एवं आरोग्य-प्रदायक है - ये 'कायिकी भक्ति' में आते हैं । शारीरिक कष्ट सहकर व्रत, उपवास, नियम पालने से सिद्धियाँ भी आती हैं ।

४. लौकिकी भक्ति : इसमें अर्घ्य, पाद्य आदि से भगवत्पूजन, रात्रि-जागरण, वाद्य, गीत आदि से

जब लग नाता जगत से तब लग भक्ति न होय ।
नाता तोड़ हरि को भजे भक्त कहावे सोय ॥

भगवान का कीर्तन करके नृत्य करना आदि का समावेश होता है ।

५. वैदिकी भक्ति : ऋग्वेद, यजुर्वेद व सामवेद का पाठ तथा जप करना, संहिताओं का अध्ययन करना एवं यज्ञ-याग आदि करना यह 'वैदिकी भक्ति' है ।

६. आध्यात्मिकी भक्ति : इस भक्ति का साधक सदा अपनी इन्द्रियों को संयम में रखकर प्राणायामपूर्वक ध्यान किया करता है । ध्यान में देखता है कि भगवान का मुख अनंत तेज से उद्दीप्त हो रहा है, उनकी कटि के ऊपरी भाग तक लटका हुआ यज्ञोपवीत शोभा पा रहा है । उनका शुक्ल वर्ण है, चार भुजाएँ हैं । उनके हाथों में वरद एवं अभय की मुद्राएँ हैं । वे पीत वस्त्र धारण किये हुए हैं तथा उनके नेत्र अत्यंत सुंदर हैं । इस प्रकार योगयुक्त पुरुष अपने हृदय में परमेश्वर का ध्यान करता है ।

न भूप देवार्चनयज्ञतीर्थस्नान-
व्रताचारक्रियातपोभिः ।
तथा विशुद्धिं लभतेऽन्तरात्मा
यथा हृदिस्थे भगवत्यनन्ते ॥

'राजन् ! देवपूजा, यज्ञ, तीर्थ-स्नान, व्रतानुष्ठान, तपस्या और नाना प्रकार के कर्मों से भी अंतःकरण की वैसी शुद्धि नहीं होती, जैसी भगवान अनंत का ध्यान करने से होती है ।' **(पद्म पुराण, पाताल खंड : ८५.२८)**

जैसे प्रज्वलित अग्नि काष्ठ को भस्म कर डालती है, उसी प्रकार भगवान की भक्ति मनुष्य के पापों को तत्काल दग्ध कर देती है ।

भगवान को संतुष्ट करनेवाले अपनी-अपनी श्रद्धा, भाव तथा भक्ति की साधन-सामग्री के अनुसार अपने चित्त के करोड़ों-करोड़ों जन्मों के दूषित संस्कारों को मिटाकर हृदय में भगवद्भाव जाग्रत करते हैं ।

लीला को लीला समझें तो बेड़ा पार हो जाय

उत्पत्ति-विनाश सतत चालू है । किसीकी उत्पत्ति ही किसीका विनाश है और जिसको नाश बोलते हैं वह किसीकी उत्पत्ति है ।

बापूजी ! बेटे की उत्पत्ति हुई तो किसका नाश हुआ ? सूक्ष्म जीव जो भटक रहा था उसका भटकना नष्ट हुआ । व्यक्ति मर गया तो किसकी उत्पत्ति हुई ? मुर्दे की उत्पत्ति हुई । मुर्दा जला तो अस्थि और राख की उत्पत्ति हुई । राख मिटी तो खाद की उत्पत्ति हुई । खाद मरी तो फसल की उत्पत्ति हुई । फसल मरी तो अनाज आदि की उत्पत्ति हुई । अनाज मरा तो व्यंजनों की उत्पत्ति हुई । व्यंजन मरा, शरीर में पहुँचा तो रस की उत्पत्ति हुई ।

लेकिन परमात्मा उत्पन्न भी नहीं होता और नष्ट भी नहीं होता, वह अनादि है । उसके सिवा सबका उत्पत्ति-विनाश होता है । जीवात्मा भी उत्पन्न नहीं होता, वह भी अनादि है और यह उत्पत्ति-विनाश की लीला भी अनादि है । लीला को लीला समझें और अपने अनादि स्वरूप को समझ लें तो बेड़ा पार हो जाय ।

– परम पूज्य संत श्री आसारामजी बापू

नवद्वारे पुरे देही हँसो लेलायते बहिः ।
वशी सर्वस्य लोकस्य स्थावरस्य चरस्य च ॥

'सम्पूर्ण स्थावर और जंगम जगत को वश में रखनेवाला वह हंस (परमेश्वर) नौ द्वारवाले शरीररूपी नगर में अंतर्यामी रूप से हृदय में स्थित देही है तथा बाह्य जगत में लीला कर रहा है ।'

(श्वेताश्वतर उपनिषद् : ३.१८)

जो सतगुरु को पाइया, सो जन उतरे पार

पूजा गुरु की कीजिये, सब पूजा जेहि माहिं।
जब जल सींचै मूल तरु, शाखा पत्र अघाहिं ॥

जैसे मूल को सींच दिया तो शाखाएँ और पत्र-पुष्प सब तृप्त हो जाते हैं, वैसे ही गुरु की पूजा में सबकी पूजा समायी हुई है, इसलिए गुरु की पूजा करनी चाहिए। उनकी पूजा करने के बाद कोई पूजा करनी बाकी नहीं रह जाती। कई देवी-देवताओं की पूजा-उपासना करके, माँ काली को प्रकट करके भी श्री रामकृष्ण को अंत में तोतापुरी गुरु से ही आखिरी प्रसाद की प्राप्ति हुई।

मूल नाम गुरु बचन है, मूल सत्य सत भाव ॥

'मैं शरीर हूँ' यह असत् भाव है, मिथ्या भाव है। 'मैं दुःखी हूँ, सुखी हूँ' यह भी मिथ्या भाव है। सत् भाव है कि 'मैं साक्षी हूँ।'

'कितने भी दुःख आये, चिंताएँ आयीं, कष्ट आये सब चले गये। मैं उनको देखनेवाला हूँ।' - इस सत् भाव में गुरुदेव जगाते हैं। कभी बेटी आपसे विपरीत व्यवहार करे, बेटा विपरीत व्यवहार करे, बाप-कुटुंबी विपरीत व्यवहार करे तो विचलित होने की जरूरत नहीं है। उस शरीर से और मन से ऐसा ही होना था, ऐसी नियति थी - ऐसा विचारकर अपने सत्भाव का चिंतन करो। गुरु की यह कुंजी वहाँ काम आती है। मौत भी आ जाय तो विचलित होने की जरूरत नहीं है। मौत करोड़ों बार आयी तो शरीर की आयी, तुम मरनेवाले नहीं हो। तुम शाश्वत अमर आत्मा हो। यह सत्य ज्ञान देनेवाले गुरु केवल ज्ञान ही नहीं देते, उधर की यात्रा में पद-पद पर मार्गदर्शन और मदद भी करते हैं।

गुरु नारायण रूप है, गुरु ग्यान को घाट।

गुरु नारायणस्वरूप हैं, ज्ञान के घाट हैं। जैसे घाट पर नहाते हैं, पानी पीते हैं, पानी भरते हैं, तैरते हैं, ऐसे ही गुरु के घाट आते हैं तो ऐहिक स्वास्थ्य, ज्ञान, संयम-सादगी आदि सारे सद्गुण मिलने लगते हैं, सब कुछ मिलने लगता है।

सतगुरु बचन प्रताप सों, मन के मिटे उचाट ॥

गुरु के वचनों से मन का उचटना मिट जाता है। थोड़ी प्रतिकूलता, थोड़ा दुःख आया तो उचाट हो गये। थोड़ी वाहवाही आयी, उसके पीछे लग पड़े। गुरु कहते हैं : नहीं, ये सब आने-जानेवाली चीजें हैं। तुम तिनके नहीं हो कि इनके साथ बहते जाओ।

सतगुरु कहि जो सिष करै, सब कारज सिध होय।

सद्गुरु का कहना शिष्य ईमानदारी से मानता हो, गुरु को धोखा देकर भागता फिरता नहीं हो, गुरु को धोखा दे के पटाता नहीं हो तो उसके सारे कारज (कार्य) सिद्ध हो जाते हैं। हमारे तो हुए भाई ! परंतु जो सद्गुरु को पटाने की कोशिश करता है, वह खुद ही पट जाता है। सद्गुरु को अपने अनुसार चलाने की कोशिश मत करो, अपनी इच्छा गुरु के ऊपर थोपो मत अपितु गुरु के संकेत में अपनी इच्छा को बह जाने दो।

अमर अभय पद पाइये, काल न झांकै कोय ॥

जो शिष्य सद्गुरु की आज्ञा में चलता है उसके सारे कार्य सिद्ध हो जाते हैं और वह अमर, अभय पद पाता है

सतगुरु बादल प्रेम के, हम पर बरस्यो आय।
अन्तर भींजी आतमा, हरी भई बनराय॥

जहाँ काल की नजर नहीं पड़ती। काल की नजर शरीर पर पड़ती है, काल की नजर तुम्हारी धन-दौलत और बाहर की वाहवाही पर पड़ती है, तुम्हारे आत्मा पर काल के बाप की भी दाल नहीं गलती।

गुरु मूरति गति चंद्रमा, सेवक नैन चकोर।

जैसे चंद्रमा और चकोर का रिश्ता है, ऐसे ही गुरु की मूर्ति और सेवक की निगाह का संबंध है। चकोर चंद्रमा से कितना दूर होता है किंतु चंद्रमा के प्रति प्रीति से उसका पूरा लाभ ले लेता है और पुष्ट होने लगता है। चंद्रमा के प्रति चकोर को कितना प्यार है, कितनी श्रद्धा है, कितना अहोभाव है कि चंद्रमा के प्रेम में अंगार चुगता है लेकिन जब चंद्रमा निकलता है तो उससे फरियाद नहीं करता कि 'तुम देर से क्यों निकले ?' ऐसे ही सत्शिष्य भी फरियाद नहीं करता।

जो शिकवा करते हैं वो मंजिल नहीं पहुँचा करते।
जो मंजिल पहुँचते हैं वो शिकवा नहीं किया करते॥
गुरु मूरति गति चंद्रमा, सेवक नैन चकोर।
आठ पहर निरखत रहे, गुरु मूरति की ओर॥

जैसे चकोर चाँद की तरफ देखता है, ऐसे ही शिष्य गुरुमूर्ति की तरफ... गुरु को साकार विग्रह में देखना तो ठीक है पर गुरु केवल एक शरीर में हैं, ऐसी धारणा से ऊपर उठकर सर्वत्र गुरुतत्त्व को देखता रहे - सोचता रहे, प्रेमभाव से सबकी गहराई में उस परब्रह्म परमात्म-तत्त्व से एकाकार गुरुतत्त्व को निहारे - यह अधिक उत्तम है ।

मारिये आसा सांपिनी...

आशा-तृष्णा जो है न, सर्पिणी है, उसको मारिये।

जिन डसिया संसार।

सारे संसार को डँसनेवाली वासना है। गुरुकृपा से निर्वासनिक सत्ता प्रकट होती है।

ताकी औषधि संतोष है, ते गुरु मंत्र विचार॥

आशा-तृष्णाओं को मिटानेवाली औषधि है - संतोष और गुरुमंत्र व उसके अर्थ का विचार।

पूरा सतगुरु सेव तूं, धोखा सब दे डार।

सत्यस्वरूप में जगे हुए पूर्ण महापुरुष का सेवन, सान्निध्य, दीक्षा-शिक्षा सारे धोखे हटा देती है। जगत से सुख लेने की बेवकूफी, देह को मैं मानने की बेवकूफी, राग और द्वेष में पच मरने की बेवकूफी - ये सारे धोखे धीरे-धीरे हट जाते हैं।

साहिब भक्ति कहँ पाइये, अब मानुष औतार॥

मनुष्य-जन्म मिला है तो परमात्मा की भक्ति का रस पाइये। भक्त का अर्थ है जो विभक्त न हो , अलग न हो। एक परमात्मा से ही आदमी विभक्त नहीं होता, बाकी सभीसे विभक्त होना ही पड़ता है।

जग मूआ विषधर धरै, कहे कबीर पुकार।
जो सतगुरु को पाइया, सो जन उतरे पार॥

कबीरजी कहते हैं : सारा जगत मर रहा है विषधर काल के शिकंजे में, विषधर अज्ञान में, विषधर अहं में। मैं पुकार के कहता हूँ कि जिन्होंने सद्गुरु को पाया, सद्गुरु की सीख को पचाया, अपनी गंदी आदतें छोड़ने को तत्पर हो गये, अपनी तुच्छ मान्यताओं पर सुहागा घुमाने को राजी हो गये, वे संसार-सागर से पार उतर जाते हैं।

सतगुरु बादल प्रेम के, हम पर बरस्यो आय।
अन्तर भींजी आतमा, हरी भई बनराय॥

उनके बरसने से मेरा अंतरात्मा भीग गया है। जैसे वृष्टि होती है और वन हरा-भरा हो जाता है, ऐसे मेरे मन में, इन्द्रियों में, अंतःकरण में, जीवन में एक प्रकार का रस आने लग गया है। अब सुख का इतना आकर्षण नहीं, दुःख का इतना भय नहीं, जगत की इतनी सत्यता नहीं और परमात्मा की इतनी दूरी नहीं दिखेगी। परमात्मा मेरा आत्मा है - ऐसा आभास होने लगेगा।

सतगुरु मोहि निवाजिया, दीन्हा अमर बोल।
सीतल छाया सुगम फल, हंसा करैं किलोल॥

गुरु की ज्ञानरूपी शीतल छाया, अमर बोल और सुगमता से परमात्म-सुख का फल पाकर यह जीवरूपी हंस किलोल करने लगा है।

(चंद्र ग्रहण : ७ सितम्बर २००६)

'ग्रहण'

क्या करें, क्या नहीं ?

सूर्य-चंद्र ग्रहण में पवित्र होकर पुण्यकार्य किये जाते हैं और अपवित्रता सम्पादक अथवा शारीरिक क्रियाओं का संचालन करनेवाले भोजनादि कर्म छोड़ दिये जाते हैं । यदि इसके विरुद्ध आचरण किया जाय तो शारीरिक तथा मानसिक सभी क्रियाओं में विघ्न-बाधा हो सकती है ।

ग्रहण के स्पर्श के समय स्नान, मध्य के समय होम, देव-पूजन और श्राद्ध तथा अंत में सचैल (वस्त्रसहित) स्नान करना चाहिए । स्त्रियाँ सिर धोये बिना भी स्नान कर सकती हैं ।

ग्रहण के स्नान में कोई मंत्र नहीं बोलना चाहिए । ग्रहण के स्नान में गरम जल की अपेक्षा ठंडा जल, ठंडे जल में भी दूसरे के हाथ से निकाले हुए जल की अपेक्षा अपने हाथ से निकाला हुआ, निकाले हुए की अपेक्षा जमीन में भरा हुआ, भरे हुए की अपेक्षा बहता हुआ, (साधारण) बहते हुए की अपेक्षा सरोवर का, सरोवर की अपेक्षा नदी का, अन्य नदियों की अपेक्षा गंगा का और गंगा की अपेक्षा भी समुद्र का जल पवित्र माना जाता है ।

१. सूर्यग्रहण में ग्रहण से चार प्रहर पूर्व और चंद्रग्रहण में तीन प्रहर पूर्व भोजन नहीं करना चाहिए । बूढ़े, बालक और रोगी एक प्रहर पूर्व तक खा सकते हैं । ग्रहण पूरा होने पर सूर्य या चंद्र, जिसका ग्रहण हो, उसका शुद्ध बिम्ब देखकर भोजन करना चाहिए । (एक प्रहर = ३ घंटे)

२. ग्रहण के दिन पत्ते, तिनके, लकड़ी और फूल नहीं तोड़ने चाहिए, बाल तथा वस्त्र नहीं निचोड़ने चाहिए व दंतधावन नहीं करना चाहिए । ग्रहण के समय ताला खोलना, सोना, मल-मूत्र का त्याग करना, मैथुन करना और भोजन करना- ये सब कार्य वर्जित हैं ।

३. ग्रहण के समय मन से सत्पात्र को उद्देश्य करके जल में जल डाल देना चाहिए । ऐसा करने से देनेवाले को उसका फल प्राप्त होता है और लेनेवाले को उसका दोष नहीं लगता ।

४. कोई भी शुभ कार्य नहीं करना चाहिए और नया कार्य शुरू नहीं करना चाहिए ।

५. ग्रहण-वेध के पहले जिन पदार्थों में तिल या कुशा डाली होती है वे पदार्थ दूषित नहीं होते । जबकि पके हुए अन्न का त्याग कर के गाय, कुत्ते को डालकर नया भोजन बनाना चाहिए ।

६. ग्रहण-वेध के प्रारंभ में तिल या कुशा मिश्रित जल का उपयोग भी अत्यावश्यक परिस्थिति में ही करना चाहिए और ग्रहण शुरू होने से अंत तक अन्न या जल नहीं लेना चाहिए ।

७. ग्रहण के समय गायों को घास, पक्षियों को अन्न, जरूरतमंदों को वस्त्र दान से अनेक गुना पुण्य प्राप्त होता है ।

८. तीन दिन या एक दिन उपवास करके स्नान-दानादि का ग्रहण में महाफल है, किंतु संतानयुक्त गृहस्थ को ग्रहण और संक्रान्ति के दिन उपवास नहीं करना चाहिए ।

९. 'स्कंद पुराण' के अनुसार ग्रहण के अवसर पर दूसरे का अन्न खाने से बारह वर्षों का एकत्र किया हुआ सब पुण्य नष्ट हो जाता है ।

१०. 'देवी भागवत' में आता है कि भूकंप एवं ग्रहण के अवसर पर पृथ्वी को खोदना नहीं चाहिए ।

जिसको मति लखती है वह जगत है ।
जो मति को लखता है वह जगदीश्वर है ।

महान भगवद्भक्त प्रह्लाद

(गतांक से आगे)

शुक्राचार्य : ''राजमाता ! बेटी कयाधू ! हम तेरे हृदय को भलीभाँति जानते हैं । जो कुछ तूने कहा है, शास्त्र और लोक की मर्यादा के सर्वथा अनुरूप है किंतु हमारी इस आज्ञा के पालन में भी शास्त्र और लोक की मर्यादा नहीं बिगड़ती । एक ओर हमारी आज्ञा तथा शास्त्र-लोक की मर्यादा है और दूसरी ओर शास्त्र-लोक की मर्यादा तथा तेरा हार्दिक दुःख है । अब तुझे जो अच्छा प्रतीत हो वही कर । दुःखित प्राणी को अपने विवेक का ज्ञान नहीं रह जाता । अतएव यदि तू हमारी आज्ञा का पालन करेगी तो तेरा दोनों ही लोकों में कल्याण होगा ।''

शुक्राचार्यजी की आज्ञा मान माता कयाधू ने सती होने का विचार त्याग दिया । प्रह्लादजी ने माता की आज्ञा से बड़े उत्साह एवं समारोह के साथ वैदिक विधि से अपने पिता दैत्यराज हिरण्यकशिपु की अंत्येष्टि-क्रिया की, जिसमें सभी असुरों ने और विद्वान ब्राह्मणों ने भाग लिया ।

यद्यपि भगवान नृसिंहजी के सहित ब्रह्मादि देवताओं ने हिरण्यकशिपु के वध के समय ही प्रह्लाद का राज्याभिषेक कर दिया था और वे नियमानुसार राजकाज चलाने लगे थे, तथापि विधिपूर्वक राज्याभिषेक होना तथा राज्याभिषेक का महोत्सव मनाना शेष था । यद्यपि प्रह्लादजी गुरुकुल में शिक्षा समाप्त करके समावर्तित हो अपने घर आ गये थे तथापि उनका सविधि गार्हस्थ्य धर्म का, गृहस्थाश्रम का आरम्भ विवाह न होने के कारण अभी नहीं हुआ था । अतएव शुक्राचार्य, मंत्रीगण तथा महर्षियों की सम्मति से राजमाता कयाधू ने सबसे पहले प्रह्लादजी के विवाह का प्रबंध किया । प्रह्लाद के विवाह के लिए उनके योग्य कन्या की खोज होने लगी किंतु वैसी कन्या कहीं नहीं मिली । अंत में राजमाता को पता चला कि उनके पतिदेव के बूढ़े मंत्री वज्रदंत की एकमात्र कन्या सुवर्णा बड़ी ही योग्य है और वह सुवर्णा ही नहीं सर्वतोभाव से सुलक्षणा भी है । राजमाता को यह भी सूचना मिली कि जबसे प्रह्लादजी ने भगवद्भक्ति का व्रत स्पष्टतया ग्रहण किया था और असुर बालकों में उसका प्रचार आरम्भ किया था, तभी से सुवर्णा भी हरिभक्ति के साथ-साथ प्रह्लाद की भक्ति में लीन रहती है और उसकी आंतरिक इच्छा है कि वह प्रह्लाद ही को अपना हृदयेश्वर-प्राणपति बनाये । अंततोगत्वा राजमाता ने अपने भाई कुम्भनाक आदि की सम्मति लेकर शुक्राचार्यजी से विवाह-विधि मिलाने की प्रार्थना की । आचार्यजी ने विधि मिलाकर कहा : ''सर्वगुणसम्पन्न मेलापक ठीक है । बेटी ! इस विवाह से वर-वधू दोनों ही को आनंद रहेगा ।''

प्रह्लादजी का विवाह इतनी धूमधाम से हुआ, उसमें इतना दान-पुण्य किया गया कि उसका पूरा वर्णन करना यहाँ संभव नहीं है ।

प्रह्लाद और सुवर्णा की समानशीलता के कारण उनमें दाम्पत्य-प्रेम का आधिक्य होना स्वाभाविक था । अतएव वे अपना गार्हस्थ्य-जीवन सुख-शांति पूर्वक बिताने लगे ।

प्रह्लादजी के राज्याभिषेक का विधान और उसके महोत्सव की तिथि तय हुई । पूरे राज्य में बड़ी धूमधाम से तैयारियाँ की गयीं । राज्याभिषेक के पूर्व के दिन सारा राज्य मांगलिक वस्तुओं, सुगंधित पुष्पों आदि से सजाया गया ।

राज्याभिषेकोत्सव में योग देने और देखने के लिए साम्राज्य के लोग तो आये ही थे, साथ ही तीनों लोक और चौदह भुवनों के देव, दानव, गंधर्व आदि भी आये थे । इस महोत्सव में बड़े-बड़े राजाओं-महाराजाओं से लेकर तपोधन वनवासी महर्षिगण तक बड़े प्रेम और उत्कंठा के साथ राजधानी में पधारे थे ।

(क्रमशः)

शिखा (सिर पर चोटी) की आवश्यकता क्यों ?

हिन्दू धर्म का छोटे-से-छोटा सिद्धांत, छोटी-से-छोटी बात भी अपनी जगह पूर्ण और कल्याणकारी है । छोटी-सी शिखा अर्थात् चोटी भी कल्याण का, विकास का साधन बनकर अपनी पूर्णता व आवश्यकता को दर्शाती है । शिखा का त्याग करना मानों अपने कल्याण का त्याग करना है । जैसे घड़ी के छोटे पुर्जे की जगह बड़ा पुर्जा काम नहीं कर सकता क्योंकि भले वह छोटा है परंतु उसकी अपनी महत्ता है, ऐसे ही शिखा की भी अनोखी महत्ता है । शिखा नहीं रखने से हम जिस लाभ से वंचित रह जाते हैं, उसकी पूर्ति अन्य किसी साधन से नहीं हो सकती ।

'हरिवंश पुराण' में एक कथा आती है । हैहय व तालजंघ वंश के राजाओं ने शक, यवन, काम्बोज, पारद आदि राजाओं को साथ लेकर राजा बाहु का राज्य छीन लिया । राजा बाहु अपनी पत्नी के साथ वन में चला गया । वहाँ राजा बाहु की मृत्यु हो गयी । महर्षि और्व ने उसकी गर्भवती स्त्री की रक्षा की और उसे अपने आश्रम में ले आये । वहाँ उसने एक पुत्र को जन्म दिया, जो आगे चलकर राजा सगर के नाम से प्रसिद्ध हुआ । राजा सगर ने महर्षि और्व से शस्त्र और शास्त्र विद्या सीखी । समय पाकर राजा सगर ने हैहयों को मार डाला और फिर शक, यवन, काम्बोज, पारद आदि राजाओं को भी मारने का निश्चय किया । वे शक, यवन आदि राजा लोग महर्षि वसिष्ठ की शरण में चले गये । वसिष्ठजी ने कुछ शर्तों पर उनको अभयदान दे दिया और सगर को आज्ञा दी कि वे उनको न मारें । राजा सगर अपनी प्रतिज्ञा भी नहीं छोड़ सकते थे और वसिष्ठजी की आज्ञा भी नहीं टाल सकते थे । अतः उन्होंने उन राजाओं का सिर शिखासहित मुँड़वाकर उनको छोड़ दिया ।

प्राचीन काल में किसीकी शिखा काट देना मृत्युदण्ड के समान माना जाता था । बड़े दुःख की बात है कि आज हिन्दू लोग अपने हाथों से अपनी शिखा काट रहे हैं । यह गुलामी की पहचान है । शिखा हिन्दुत्व की पहचान है । यह आपके धर्म और संस्कृति की रक्षक है । शिखा के विशेष महत्त्व के कारण ही हिन्दुओं ने यवन शासन के दौरान अपनी शिखा की रक्षा के लिए सिर कटवा दिये पर शिखा नहीं कटवायी ।

आधुनिक विज्ञान भी स्वीकार करता है शिखा का महत्त्व

डॉ. हाय्वमन कहते हैं : ''मैंने कई वर्ष भारत में रहकर भारतीय संस्कृति का अध्ययन किया है । यहाँ के निवासी बहुत काल से सिर पर चोटी रखते हैं, जिसका वर्णन वेदों में भी मिलता है । दक्षिण में तो आधे सिर पर 'गोखुर' के समान चोटी रखते हैं । उनकी बुद्धि की विलक्षणता देखकर मैं अत्यंत प्रभावित हुआ हूँ । अवश्य ही बौद्धिक विकास में चोटी बड़ी सहायता देती है । सिर पर चोटी रखना बड़ा लाभदायक है । मेरा तो हिन्दू धर्म में अगाध विश्वास है और मैं चोटी रखने का कायल हो गया हूँ ।''

प्रसिद्ध विद्वान डॉ. आई.ई. क्लार्क एम.डी. ने कहा है : ''मैंने जबसे इस विज्ञान की खोज की है तबसे मुझे विश्वास हो गया है कि हिन्दुओं का हर एक नियम

मस्तिष्क ठंडक चाहता है और मस्तुलिंग गर्मी । मस्तिष्क को ठंडक पहुँचाने के लिए क्षौर कर्म करवाना और मस्तुलिंग को गर्मी पहुँचाने के लिए गोखुर के परिमाण के बाल रखना आवश्यक होता है ।

विज्ञान से परिपूर्ण है । चोटी रखना हिन्दुओं का धर्म ही नहीं, सुषुम्ना के केन्द्रों की रक्षा के लिए ऋषि-मुनियों की खोज का विलक्षण चमत्कार है ।''

इसी प्रकार पाश्चात्य विद्वान मि. अर्ल थॉमस लिखते हैं कि ''सुषुम्ना की रक्षा हिन्दू लोग चोटी रखकर करते हैं, जबकि अन्य देशों में लोग सिर पर लम्बे बाल रखकर या हैट पहनकर करते हैं । इन सबमें चोटी रखना सबसे लाभकारी है । किसी भी प्रकार से सुषुम्ना की रक्षा करना जरूरी है ।''

वास्तव में मानव-शरीर को प्रकृति ने इतना सबल बनाया है कि वह बड़े-से-बड़े आघात को सहन करके भी जीवित रह जाता है परंतु शरीर में कुछ ऐसे भी स्थान हैं, जिन पर आघात होने से मनुष्य की तत्काल मृत्यु हो सकती है । इन्हें 'मर्म-स्थान' कहा जाता है । शिखा के अधोभाग में भी मर्म-स्थान होता है, जिसके लिए सुश्रुताचार्य ने लिखा है :

मस्तकाभ्यन्तरो परिष्टात् शिरा संधि सन्निपातो ।
रोमावर्तोऽधिपतिस्तत्रापि सद्यो मरणम् ।

अर्थात् मस्तक के भीतर ऊपर जहाँ बालों का आवर्त (भँवर) होता है, वहाँ संपूर्ण नाड़ियों व संधियों का मेल है, उसे 'अधिपतिमर्म' कहा जाता है । यहाँ पर चोट लगने से तत्काल मृत्यु हो जाती है।

(सुश्रुत संहिता, शारीरस्थानम् : ६.२८)

सुषुम्ना के मूल स्थान को 'मस्तुलिंग' कहते हैं । मस्तिष्क के साथ ज्ञानेन्द्रियों - कान, नाक, जीभ, आँख आदि का संबंध है और कर्मेन्द्रियों - हाथ, पैर, गुदा, इन्द्रिय आदि का संबंध मस्तुलिंग से है । मस्तिष्क व मस्तुलिंग जितने सामर्थ्यवान होते हैं, उतनी ही ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों की शक्ति बढ़ती है । मस्तिष्क ठंडक चाहता है और मस्तुलिंग गर्मी । मस्तिष्क को ठंडक पहुँचाने के लिए क्षौर कर्म करवाना और मस्तुलिंग को गर्मी पहुँचाने के लिए गोखुर के परिमाण के बाल रखना आवश्यक होता है । बाल कुचालक हैं, अतः चोटी के लम्बे बाल बाहर की अनावश्यक गर्मी या ठंडक से मस्तुलिंग की रक्षा करते हैं ।

शिखा रखने के अन्य निम्न लाभ बताये गये हैं :

१. शिखा रखने तथा इसके नियमों का यथावत् पालन करने से सद्बुद्धि, सद्विचारादि की प्राप्ति होती है ।
२. आत्मशक्ति प्रबल बनी रहती है ।
३. मनुष्य धार्मिक, सात्त्विक व संयमी बना रहता है ।
४. लौकिक-पारलौकिक कार्यों में सफलता मिलती है।
५. सभी देवता मनुष्य की रक्षा करते हैं ।
६. सुषुम्ना-रक्षा से मनुष्य स्वस्थ, बलिष्ठ, तेजस्वी और दीर्घायु होता है ।
७. नेत्रज्योति सुरक्षित रहती है ।

इस प्रकार धार्मिक, सांस्कृतिक, वैज्ञानिक सभी दृष्टियों से शिखा (चोटी) की महत्ता स्पष्ट होती है । परंतु आज हिन्दू लोग पाश्चात्यों के चक्कर में पड़कर फैशनबल दिखने की होड़ में शिखा नहीं रखते व अपने ही हाथों अपने धर्म व संस्कृति का त्याग कर डालते हैं । लोग हँसी उड़ायें, पागल कहें तो सह लो पर धर्म का त्याग मत करो । मनुष्यमात्र का कल्याण चाहनेवाली अपनी हिन्दू संस्कृति नष्ट हो रही है । हिन्दू स्वयं ही अपनी संस्कृति का नाश करेंगे तो रक्षा कौन करेगा ?

प्रश्न : आकस्मिक संकट-निवारण का क्या उपाय है ?

उत्तर : प्रथम तो धैर्य धारण करना चाहिए । धैर्य से बुद्धि में विचार उत्पन्न होता है । भयातुर होने से, निराश होने से धैर्य छूट जाता है । धैर्य छूटने लगे तब सर्वसमर्थ प्रभु से संपूर्ण हृदय से प्रार्थना करनी चाहिए और केवल जल पीकर उपवास करना चाहिए । इससे असह्य कष्ट व संकट में अदृश्य सहायता प्राप्त होती है ।

शरीर स्वास्थ्य

पुनर्नवा
जो बनाये आपके शरीर को नया

शरीरं पुनर्नवं करोति इति पुनर्नवा।

जो अपने रक्तवर्धक एवं रसायन गुणों द्वारा सम्पूर्ण शरीर को अभिनव स्वरूप प्रदान करे, वह है 'पुनर्नवा'। यह हिन्दी में साटी, साँठ, गदहपुरना, विषखपरा, गुजराती में साटोड़ी, मराठी में घेटुली तथा अंग्रेजी में 'हॉगवीड' नाम से जानी जाती है।

मूँग या चने की दाल मिलाकर इसकी बढ़िया सब्जी बनती है, जो शरीर की सूजन, मूत्ररोगों (विशेषकर मूत्राल्पता), हृदयरोगों, दमा, शरीरदर्द, मंदाग्नि, उलटी, पीलिया, रक्ताल्पता, यकृत व प्लीहा के विकारों आदि में फ़ायदेमंद है। इसके ताजे पत्तों के १५-२० मि.ली. रस में चुटकी भर काली मिर्च व थोड़ा-सा शहद मिलाकर पीना भी हितावह है। भारत में यह सब्जी सर्वत्र पायी जाती है। संत श्री आसारामजी आश्रम (दिल्ली, अमदावाद, सूरत आदि) में पुनर्नवा का नमूना देखा जा सकता है।

पुनर्नवा का शरीर पर होनेवाला रसायन कार्य :

दूध, अश्वगंधा आदि रसायन द्रव्य रक्त-मांसादि को बढ़ाकर शरीर का बलवर्धन करते हैं परंतु पुनर्नवा शरीर में संचित मलों को मल-मूत्रादि द्वारा बाहर निकालकर शरीर के पोषण का मार्ग खुला कर देती है।

बुढ़ापे में शरीर में संचित मलों का उत्सर्जन यथोचित नहीं होता। पुनर्नवा अवरुद्ध मल को हटाकर हृदय, नाभि, सिर, स्नायु, आँतों व रक्तवाहिनियों को शुद्ध करती है, जिससे मधुमेह, हृदयरोग, दमा, उच्च रक्तदाब आदि बुढ़ापे में होनेवाले कष्टदायक रोग उत्पन्न नहीं होते।

यह हृदय की क्रिया में सुधार लाकर हृदय का बल बढ़ाती है। पाचकाग्नि को बढ़ाकर रक्तवृद्धि करती है। विरुद्ध आहार व अंग्रेजी दवाओं के अतिशय सेवन से शरीर में संचित हुए विषैले द्रव्यों का निष्कासन कर रोगों से रक्षा करती है।

बालरोगों में लाभकारी पुनर्नवा शरबत : पुनर्नवा के पत्तों के १०० ग्राम स्वरस में मिश्री चूर्ण २०० ग्राम व पिप्पली (पीपर) चूर्ण १२ ग्राम मिलाकर पकायें तथा चाशनी गाढ़ी हो जाने पर उसको उतार के छानकर शीशी में रख लें। इस शरबत को ४ से १० बूँद की मात्रा में (आयु अनुसार) रोगी बालक को दिन में तीन-चार बार चटायें। खाँसी, श्वास, फेफड़ों के विकार, बहुत लार बहना, जिगर बढ़ जाना, सर्दी-जुकाम, हरे-पीले दस्त, उलटी तथा बच्चों की अन्य बीमारियों में बाल-विकारशामक औषधि कल्प के रूप में इसका उपयोग बहुत लाभप्रद है।

औषधि-प्रयोग

१. **(अ) नेत्रों की फूली :** पुनर्नवा की जड़ को घी में घिसकर आँखों में आँजें।
   (ब) नेत्रों की खुजली : पुनर्नवा की जड़ को शहद या दूध में घिसकर आँजें।
   (स) नेत्रों से पानी गिरना : पुनर्नवा की जड़ को शहद में घिसकर आँखों में आँजें।

२. **पेट के रोग :** गोमूत्र एवं पुनर्नवा का रस समान मात्रा में मिलाकर पीयें।

३. **गैस :** २ ग्राम पुनर्नवा के मूल का चूर्ण, आधा ग्राम हींग व १ ग्राम काला नमक गर्म पानी से लें।

दूध, अश्वगंधा आदि रसायन द्रव्य रक्त-मांसादि को बढ़ाकर शरीर का बलवर्धन करते हैं परंतु पुनर्नवा शरीर में संचित मलों को मल-मूत्रादि द्वारा बाहर निकालकर शरीर के पोषण का मार्ग खुला कर देती है ।

४. **मूत्रावरोध :** पुनर्नवा का ४० मि.ली. रस अथवा उतना ही काढ़ा पीयें । पुनर्नवा के पत्ते बाफकर पेडू पर बाँधें । १ ग्राम पुनर्नवाक्षार (आयुर्वैदिक औषधियों की दुकान से मिलेगा) गर्म पानी के साथ पीने से तुरंत फायदा होता है ।

५. **पथरी :** पुनर्नवा की जड़ को दूध में उबालकर सुबह-शाम पीयें।

६. **सूजन :** पुनर्नवा की जड़ का काढ़ा पिलाने एवं सूजन पर जड़ को पीसकर लेप करने से लाभ होता है ।

७. **वृषण शोथ (हाइड्रोसिल) :** पुनर्नवा का मूल दूध में घिस के लेप करने से वृषण की सूजन मिटती है।

८. **पीलिया :** पुंनर्नवा के पंचांग (जड़, छाल, पत्ती, फूल और बीज) को शहद एवं मिश्री के साथ लें अथवा उसका रस या काढ़ा पीयें।

९. **पागल कुत्ते का विष :** सफेद पुनर्नवा के मूल का २५ से ५० ग्राम रस २० ग्राम घी में मिलाकर रोज पीयें ।

१०. **फोड़ा :** पुनर्नवा के मूल का काढ़ा पीने से कच्चा अथवा पका हुआ फोड़ा भी मिट जाता है ।

११. **अनिद्रा :** पुनर्नवा के मूल का १०० मि.ली. काढ़ा दिन में २ बार पीयें ।

१२. **संधिवात :** पुनर्नवा के पत्तों की सब्जी सोंठ डालकर खायें।

१३. एड़ी में वायुजन्य वेदना होती हो तो 'पुनर्नवा तेल' एड़ी पर घिसें व सेंक करें ।

१४. **योनिशूल :** पुनर्नवा के हरे पत्तों को पीसकर बनायी गयी उँगली जैसे आकार की लंबी गोली को योनि में रखने से भयंकर योनिशूल भी मिटता है ।

१५. **खूनी बवासीर :** पुनर्नवा के मूल को पीसकर फीकी छाछ (२०० मि.ली.) या बकरी के दूध (२०० मि.ली.) के साथ पीयें ।

१६. **हृदयरोग :** हृदयरोग के कारण सर्वांग सूजन हो गयी हो तो पुनर्नवा के मूल का १० ग्राम चूर्ण और अर्जुन की छाल का १० ग्राम चूर्ण २०० मि.ली. पानी में काढ़ा बनाकर सुबह-शाम पीयें ।

१७. **दमा :** १० ग्राम भारंगमूल चूर्ण और १० ग्राम पुनर्नवा चूर्ण को ३०० मि.ली. पानी में उबालकर काढ़ा बनायें । ५० मि.ली. बचे तब सुबह-शाम पीयें ।

१८. **हाथीपाँव :** ५० मि.ली. पुनर्नवा का रस और उतना ही गोमूत्र मिलाकर सुबह-शाम पीयें ।

१९. **जलोदर :** पुनर्नवा की जड़ के २-३ ग्राम चूर्ण को शहद के साथ खायें।

टिप्पणी : आश्रम के सभी सेवाकेन्द्रों पर पुनर्नवा मूल से बनी 'पुनर्नवा घनवटी' उपलब्ध है ।

रसायन प्रयोग

हमेशा उत्तम स्वास्थ्य बनाये रखने के लिए रोज सुबह पुनर्नवा के मूल या पत्तों का २ चम्मच (१० मि.ली.) रस पीयें अथवा पुनर्नवा के मूल का चूर्ण २ से ४ ग्राम की मात्रा में दूध या पानी से लें या सप्ताह में १ दिन पुनर्नवा की सब्जी बनाके खायें ।

यदि आप लम्बी जिंदगी जीना चाहते हैं तो...

छोटी हरड़ (हर्र) रात को पानी में भिगो दें । पानी इतना ही डालें कि ये सोख लें । प्रातः उनको देशी घी में तलकर काँच के बर्तन में रख लें । २ माह तक रोज १-१ हरड़ सुबह-शाम खाते रहें । इससे शरीर हृष्ट-पुष्ट होगा ।

आयुर्वेद के श्रेष्ठ आचार्य वाग्भट्ट के अनुसार हरड़ चूर्ण घी में भूनकर नियमित रूप से सेवन करने से भी शरीर बलवान होकर दीर्घायु की प्राप्ति होती है ।

(आश्रम की पुस्तक 'आरोग्यनिधि-२' से)

धर्म कामार्थ मोक्ष वे पाते, आपद रोगों से बच जाते।
सभी शिष्य रक्षा पाते हैं, सूक्ष्म शरीर गुरु आते हैं ॥

डकैत ने बन्दूक वापस कर आत्मसमर्पण किया

मैं म.प्र. आर्म्ड पुलिस, ग्वालियर में नौकरी करता हूँ। रात के समय मैं अपनी बन्दूक लेकर जा रहा था, तभी गोरा घाट थाने के नजदीक हजरत रावत सिंह, मेघसिंह रावत, वीरेन्द्र रावत (तीन डकैत) अचानक टकरा गये। इन डकैतों को ढूँढ़नेवाले के लिए ५० हजार रुपये का इनाम भारत सरकार ने घोषित किया था। उन्होंने मेरे ऊपर अपनी बन्दूकें तानते हुए कहा : ''बन्दूक हमें दे दे अन्यथा गोली मार देंगे।'' वे लोग मेरी बन्दूक लेकर चले गये। मैंने थाने में रिपोर्ट दर्ज करायी। उसके बाद पूज्य गुरुदेव संत श्री आसारामबापूजी ग्वालियर आश्रम में पधारे। तब मैंने उन्हें सारी बात बतायी व प्रार्थना की। पूज्य बापूजी ने कहा : ''मिल जायेगी'' और उसके बाद शीघ्र ही हजरत रावत सिंह पुलिस मुठभेड़ में मारा गया। उसके मरते ही उसका एक साथी जिस पर १५ हजार का इनाम था (समर जातव), मेरी बन्दूक लेकर थाने में हाजिर हो गया। मैंने ग्वालियर सेन्ट्रल जेल में उससे पूछा : ''मेरी बन्दूक लेकर तुम हाजिर क्यों हुए ?'' उसने कहा : ''पहले आप यह बताइये कि आपके घर में सफेद दाढ़ी, सफेद कपड़े वाले बाबा कौन हैं ?'' तभी उसने मेरे गले में बापूजी के चित्रवाला लॉकेट देखकर कहा कि ''यही बाबाजी मेरे सपने में आकर बार-बार कह रहे थे कि 'मेरे बच्चे की बन्दूक वापस कर दे, अन्यथा मारा जायेगा।' और मेरी पिटाई भी करते थे।''

पूज्यश्री की कृपा से ही ऐसे डकैतों के हाथ गयी हुई मेरी बन्दूक वापस आ पायी है। मैं पूज्य बापूजी को कोटि-कोटि प्रणाम करता हूँ।

– अशोक परिहार, डी-२, टकसाल स्कूल के सामने, लश्कर, ग्वालियर (म.प्र.)।
दूरभाष क्र. : ०९४२५४०७७२४.

गुरुकृपा से दिव्य अनुभूतियाँ

मैं मौन मंदिर में आत्मसाक्षात्कार पाने या उसकी नजदीकी स्थिति तक पहुँचने के लिए आया था। पहले दो दिन मैंने नियम के अनुसार सब किया परंतु तीसरे दिन मैं पूज्य बापूजी के चित्र के आगे खूब रोया, क्योंकि मुझे कुछ प्रगति नहीं लग रही थी। शाम को मुझे ध्यान में खूब कंपन हुआ और मेरा शरीर जमीन पर अपने-आप कूदने लगा। उसके बाद खूब शांति मिली पर मन नहीं मान रहा था। 'श्री योगवासिष्ठ महारामायण' पढ़ने से और बापूजी की कैसेट सुनने से मुझे मेरे कई प्रश्नों के उत्तर मिले। मैं रोज बापूजी के चित्र पर त्राटक करता था। त्राटक करते समय मैं बापूजी के साथ खूब बातें करता। मुझे इतनी शांति मिली जिसका मैं वर्णन नहीं कर सकता।

पाँचवें दिन मुझे ध्यान में खूब प्रकाश दिखायी दिया और मन ऐसा शांत हुआ कि उसे शब्दों में व्यक्त करना असंभव है। मैंने बापूजी के चित्र के आगे प्रार्थना की : 'बापूजी ! अगर यह प्रकाश आपके आशीर्वाद से है तो यहाँ से मेरे घर लौटने से पहले मुझे साक्षात् रूप में जरूर दर्शन देना।' और बापूजी मुझे आखिरी दिन मिले तथा प्रसाद भी दिया। कैसे हैं ये हमारे अंतर्यामी देव !

– पवन कुमार ककूड
मैनेजर, कैनेरा बैंक, रोहतक (हरि.)।

पूज्य बापूजी के आगामी कार्यक्रम

(१) ७ से ९ अगस्त, संत श्री आसारामजी आश्रम गोविंदपुरा, जयपुर। फोनः (०१४१) २२७४६०४.
(२) ९ अगस्त को अमदावाद आश्रम में। फोन : (०७९) २७५०५०१०-११.
(३) १५ से १६ अगस्त जन्माष्टमी महोत्सव संत श्री आसारामजी आश्रम, जहाँगीरपुरा, सूरत। फोन : (०२६१) २७७२२०१-०२.

श्री गुरुपूर्णिमा महोत्सव २००६

सनातना नित्यनूतना संस्कृतिः ।

भारतीय संस्कृति सनातन, नित्य नूतन संस्कृति है। हमारे भीतर, हमारी रगों में उस ऋषि परंपरा का रक्त गतिमान है जिसका प्रभाव समय-समय पर विश्व क्षितिज पर, राष्ट्र के शिखर पर यदा-कदा दिखायी दे ही जाता है। उसके प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं श्री गुरुपूर्णिमा महोत्सव में, जिसमें ऋषि-संतानों के श्रद्धा-विश्वास का सैलाब उमड़ पड़ता है। यदि आज कोई प्राचीन ऋषि हमारे बीच आ जायें तो उन्हें हमारा बाह्य वेश तो अलग ही दिखेगा लेकिन हृदय में स्थित श्रद्धा-भक्ति-तितिक्षा देखकर वे कह उठेंगे : 'ये मेरे ही बच्चे हैं।'

पुरातन काल से शिष्यवृंद श्री व्यासपूर्णिमा के अवसर पर अपने सद्गुरुदेव के समीप जाकर दर्शन-पूजन-सत्संग का लाभ लेके कृतार्थ होते थे। युगों से यही परम्परा रही है लेकिन इस कलियुग में करुणावत्सल सद्गुरुदेव परम पूज्य बापूजी ने बड़ी रियायत की, अपने विराट शिष्य-समुदाय के बीच वे स्वयं पधारे।

ब्रह्मनिष्ठ परम पूज्य बापूजी के पूरे विश्व में फैले शिष्य-समुदाय की विशाल संख्या को देखते हुए किसी एक स्थान पर श्री गुरुपूर्णिमा दर्शन-सत्संग का आयोजन नामुमकिन है। इसे ध्यान में रखते हुए इस वर्ष देश के विभिन्न प्रांतों में ९ स्थानों पर श्री गुरुपूर्णिमा दर्शनोत्सव का आयोजन हुआ।

दर्शन-सत्संग का सिलसिला प्रारंभ हुआ चण्डीगढ़ से।

२२ से २४ जून के दौरान जम्मू आश्रम के विशाल प्रांगण में व्यासपूर्णिमा महोत्सव का द्वितीय चरण संपन्न हुआ। विशाल स्थायी पंडाल तो गुरुभक्तों की उपस्थिति से खचाखच भर ही गया, अस्थायी पंडाल भी छलक उठा। बैठने के स्थान के अभाव में लोग पंडाल के बाहर खड़े रहकर भी घंटों संतदर्शन और सत्संग से पुलकित होते रहे। हरिभक्तों की ऐसी श्रद्धा-तितिक्षा को देखकर पूज्यश्री कह उठे :

सकलभुवनमध्ये निर्धनास्तेऽपि धन्याः ।
निवसति हृदि येषां श्रीहरेर्भक्तिरेका ॥

'जिनके हृदय में एकमात्र श्रीहरि की भक्ति निवास करती है वे त्रिलोकी में अत्यंत निर्धन होने पर भी परम धन्य हैं।' **(श्रीमद्भागवत)**

यहाँ अपने अनुभव-संपन्न अमृतवाणी में पूज्यश्री ने जीवन जीने की कला बतायी और यह भी बताया कि ''मौत का भी 'आर्ट' होता है। तुम एक ऐसी चेतना हो जिसकी कभी मौत नहीं होती।'' उन्होंने संसार-सागर से, जन्म-मरण से पार होने का आह्वान करते हुए यह भी बताया कि 'जीव बारम्बार लौटकर क्यों आता है ?'

२५ और २६ जून को श्री गुरुपूर्णिमा दर्शनोत्सव का तृतीय चरण जालंधर (पंजाब) में सम्पन्न हुआ। २७ जून से दो दिवसीय गुरुपूनम महोत्सव लुधियाना (पंजाब) में सम्पन्न हुआ। यहाँ बारिश और धूप की अठखेलियाँ चलती रहीं किंतु सत्संग के समय बरखा रानी आकाश में ही थमी रही और सत्संगियों का हुजूम सत्संग-स्थल पर उमड़ता रहा। विशाल पंडाल को भक्तों ने छोटा साबित कर दिया।

सत्संग में उपस्थित भक्तों को मक्खन-मिश्री का प्रसाद बाँटा गया ।

भगवन्नाम के अमिट प्रभाव का प्रतिपादन करते हुए पूज्यश्री ने आधुनिक परिवेश के अनुरूप दृष्टांत देते हुए कहा : ''मोबाईल का सिम-कार्ड तो डिस्चार्ज हो जाता है, अकाल-पुरुष भगवान के नाम का सिम-कार्ड कभी डिस्चार्ज नहीं होता है।''

अम्बाला और पानीपत आश्रम में दर्शन-लाभ देते हुए पूज्यश्री दिल्ली पहुँचे, जहाँ १-२ जुलाई को व्यासपूर्णिमा महोत्सव का पाँचवाँ चरण जापानी पार्क, रोहिणी में सम्पन्न हुआ। यहाँ अनेक प्रांतों से शिष्यों का सैलाब सद्गुरु-दर्शन के लिए उमड़ पड़ा और सभीकी तमन्ना थी पूज्य बापूजी के नजदीक से दर्शन की । सभीकी तमन्ना पूरी हुई । पूज्य बापूजी व्यासपीठ से उतरे और पंडाल के अन्तिम छोर तक लोगों के बीच गये । विश्ववन्दनीय पूज्य बापूजी को अपने इतने करीब पाकर भक्त भाव-विभोर हो उठे । मानों भावों की भाषा में कह रहे हों :

भक्ति दूध की अंजली भरकर, अभिषेक गुरुवर का करते हैं।
अभिषेक तुम्हारे में बापू, मधु प्रेम समर्पित करते हैं ।।
श्रद्धा के सागर का पानी, भक्ति की हमारी गागर है ।
गागर में सागर भर भर कर, हम प्रीत समर्पित करते हैं ।।

गुरु-शिष्य संबंधों का ऐसा अप्रतिम भाव देखकर निगुरे तो चकरा जायेंगे लेकिन वे भी जब सगुरे होंगे तो इस भाव की मधुरता व अलौकिकता को समझ पायेंगे।

सद्गुरु तो वह उमड़ता हुआ ज्ञानसागर है जो अपने प्यारे, दीवाने शिष्यों का मुखचंद्र देखकर लहराने लगता है और सत्शिष्य उन लहरों में डूब जाना चाहता है, खो जाना चाहता है। इस खो जाने में ही सब कुछ पाना होता है।

लोकसंत बापूजी ने आत्मविश्रांति पाने की कई कुंजियाँ बतायीं। 'चुप साधन' का कुछ क्षणों तक प्रयोग भी कराया, जिससे विराट जनमेदनी में सन्नाटा छा गया । पूज्यश्री ने कहा : ''आपके पास जो भी योग्यता है उसे 'बहुजनहिताय-बहुजनसुखाय' लगायें तो वह विकसित होती है, अन्यथा वह योग्यता कुंठित हो जाती है । अतः यथाशक्ति समाज की भलाई करें और बदले में कुछ भी पाने की इच्छा न करें तो ईश्वर में विश्रांति मिलने लगती है । कर्तृत्व में या फल में आसक्ति न हो तो परमात्म-विश्रांति मिलने लगती है।''

'ऋषि प्रसाद' एक उत्तम उपहार

ऋषि प्रसाद का प्रत्येक अंक संग्रहणीय, बार-बार पढ़ने योग्य एवं आध्यात्मिक चिंतन-मनन में सहयोगी है। भारतीय संस्कृति के उच्चतर दिव्य ज्ञानामृत का लाभ लेने हेतु आज ही सदस्य बनें एवं इष्टमित्रों को भी सदस्य बनायें।

--✂--------------------✂--------------------✂--

सदस्यता आवेदन पत्र/नवीनीकरण पत्र

नाम : ....

पता : ....

....

.... पिन [| | | | |] फोन : ....

भाषा : हिन्दी/गुजराती/मराठी/तेलगु/अंग्रेजी ....

बैंक .... नंबर .... राशि .... का डिमांड ड्राफ्ट ऋषि प्रसाद की एक/ दो/पाँच वर्ष की सदस्यता हेतु संलग्न है।

भवदीय,

दिनांक : ....

--✂--------------------✂--------------------✂--

✻ डिमांड ड्रॉफ्ट ऋषि प्रसाद, अमदावाद के नाम से बनायें।

☞ अगर आप पुराने सदस्य हैं और आपके पते के लेबल पर **EXP- 164** अथवा **अंतिम- 164** लिखा हुआ है तो आप अपनी सदस्यता का नवीनीकरण करा लें । क्योंकि उपरोक्त संकेत दर्शाता है कि यह आपका अंतिम अंक है। सदस्यता की संपूर्ण जानकारी इसी अंक के अनुक्रमवाले पन्ने पर दी गयी है।

गुरुपूर्णिमा महोत्सव का छठा चरण भोपाल आश्रम (म.प्र.) में रहा। २-३ जुलाई को सनातन धर्म के ऋषियों के प्रति, अखिल पुराणवेत्ता महर्षि वेदव्यासजी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए सद्गुरुदेवश्री ने कहा : ''अज्ञान-अंधकार से युक्त जगत में भूले-भटके मानव को ज्ञान-प्रकाश से आलोकित करनेवाले, अपनी दिव्यता का बोध करानेवाले, पुरातन संस्कृति की आधारशिला, सन्मार्ग के पथप्रदर्शक महर्षि वेदव्यासजी के प्रति, सद्गुरुओं के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने का पर्व व्यासपूर्णिमा, आषाढ़ी पूर्णिमा, ज्ञानपूर्णिमा है। गुरुपूर्णिमा मानव को लघुता से गुरुता की ओर ले जाने का पर्व है। गुरु चाहते हैं कि शिष्य अपनी लघुता को छोड़कर विराट गुरुतत्त्व में समाहित हो जाय, जीते-जी ही मुक्ति का अनुभव कर ले।

भोपाल के नगरीय प्रशासन तथा आवास पर्यावरण मंत्री श्री जयन्त मलैया और वित्त मंत्री श्री राघवजी ने भी गुरुपूनम के निमित्त यहाँ दर्शन-सत्संग व आशीर्वाद प्राप्त किया।

इस वर्ष गुरुपूनम महोत्सव का सातवाँ चरण ५ से ७ जुलाई तक विदर्भ क्षेत्र, महाराष्ट्र की उपराजधानी नागपुर में रहा।

पूज्य बापूजी के विदर्भ में पधारने से पूर्व गत ४ दिनों से वहाँ मूसलाधार बारिश हो रही थी। विदर्भ के कई स्थानों में बाढ़ की स्थिति बनी हुई थी। मौसम विभाग ने भी ४ जुलाई को आगामी ४८ घंटे में मूसलाधार वर्षा की चेतावनी दी थी। सारा विदर्भ साक्षी है कि ४ जुलाई को पूज्य बापूजी के आगमन से इन्द्र देवता ने राहत बख्शी और सूर्यदेवता भी बादलों को चीरकर प्रातः स्मरणीय पूज्य बापूजी और बापूजी के दीवानों की दीवानगी को निहार रहे थे। सच है कि -

इस जहाँ में बापू रहते हैं,
उस जहाँ से बापू की दोस्ती गजब की चलती है।
ऐसी अनोखी शान है गुरुदेव के दरबार में,
इन्द्रदेव और सूर्यदेव भी सहभागी हैं इस कार्य में ॥

मौसम विभाग की चेतावनी, बाढ़ की सी स्थिति और मूसलाधार बारिश पर ब्रेक - सारे शहर में यह चर्चा का विषय रहा। लोग इसे पूज्य बापूजी के आगमन पर चमत्कार मानते हैं, अन्यथा उस परिस्थिति से निजात पाना किसी व्यक्ति या सरकार के हाथ की बात नहीं थी।

देवशयनी एकादशी और चतुर्मास के प्रारंभिक दिनों के इस अवसर पर पूज्यश्री ने कहा : ''वस्तु जितनी सूक्ष्म होती है उतनी ही वह विभु (बड़ी, व्यापक) होती है और जितनी विभु होगी उतनी वह स्वतंत्र भी होती है। आपके शरीर से आपका मन ज्यादा विभु है। शरीर तो गाड़ी की गुलामी करेगा किंतु मन तो फटाक-से घर पहुँच जायेगा; मुंबई, कोलकाता, देश-परदेश पहुँच जायेगा। मन से भी ज्यादा आपकी मति विभु है और मति से भी ज्यादा आपका जीव विभु है, जीव से भी ज्यादा आपका आत्मा-परमात्मा विभु है। ऐसे विभु के ज्ञान को देनेवाले जो महापुरुष हुए वे 'व्यास' कहे गये और उन महापुरुषों का ज्ञान समाज को मिलता रहे, समाज खा-पीकर पशु की नाईं अपनी जिंदगी पसार न करे, अपितु बड़ा दुर्लभ मनुष्य-शरीर दुर्लभ चीज परमात्म-सुख पाने के लिए है - ऐसे ज्ञान की, सत्संग की जो सुंदर व्यवस्था उन महापुरुषों ने की, उसका लाभ समाज को मिलता रहे इसलिए 'व्यासपूर्णिमा' मनायी जाती है।

गुरुपूर्णिमा दर्शनोत्सव के पहले ही दिन लोगों में अपूर्व उत्साह देखने को मिला। सारा नागपुर बापूमय हो चुका था। रेलवे स्टेशन, बस स्टैंड, नगर के मुख्य मार्गों पर बापूजी के शिष्यों का ही ताँता लगा हुआ देखा गया।

भक्तिप्रधान भूमि आलंदी आश्रम (महा.) में गुरुपूर्णिमा का आठवाँ चरण संपन्न हुआ।

यहाँ भक्ति-सागर में सबको गोता लगवाने के साथ-साथ पूज्यश्री ने हर परिस्थिति में छुपी उस परमेश्वर की दयालुता को प्रकट करते हुए कहा : ''गृहस्थी के जीवन में तीन प्रकार के सुख माने जाते हैं। उत्तम है आरोग्य सुख, दूसरा है परिवार का, स्नेह का सुख और तीसरा है संपत्ति का सुख। संपत्ति, स्नेह और आरोग्य ये तीनों एक साथ कहीं नहीं रहते। संपत्ति होगी तो आरोग्य में गड़बड़ होगी। आरोग्य होगा तो संपत्ति में गड़बड़ होगी। संपत्ति और आरोग्य ठीक हैं तो कुटुंब के स्नेह में गड़बड़ी होगी। कितना दयालु है ईश्वर, अनुकूल भी है लेकिन आप कहीं फँसे नहीं इसलिए प्रतिकूलता भी कर रहा है। आप सफल हो जाते हैं, यशस्वी हो जाते हैं, भोगी हो जाते हैं तो फिर बीमारी देकर आपको संयमी भी बना देता है, अहंकारी हो जाते हैं तो दुश्मन और निंदा देकर आपके अहंकार को भी नीचा कर देता है।''

महर्षि वेदव्यास जिस आत्मानुभव से संपन्न थे, उसी

1 August 2006
RNP.NO. GAMC 1132/2006-08
Licenced to Post without Pre-Payment
LIC NO. GUJ-207/2006-08
RNI NO. 48873/91.
DL (C) - 01/1130/2006-08.
WPP LIC.NO. U (C)-232/2006-08
G2/MH/MR-NW-57/2006-08
WPP LIC NO. NW-9/2006

आत्मानुभव में प्रतिष्ठित पूज्य बापूजी के श्रीमुख से यहाँ भावसमाधि की अवस्था में निःसृत उद्‌गार हर साधक के लिए श्रवणीय हैं। जो वहाँ प्रत्यक्ष थे उन्होंने तो उसका लाभ उठाया ही, अन्य लोग ऑडियो कैसेट, एम.पी.३, वी.सी.डी. के माध्यम से अवश्य देखें-सुनें।

व्यासपूर्णिमा महोत्सव का अंतिम चरण ११-१२ जुलाई को अमदावाद आश्रम में सम्पन्न हुआ।

अबसे पूर्व हर वर्ष, हर स्थान पर साधकवृंद व्यासपीठ के करीब पंक्तिबद्ध आकर सद्‌गुरु-दर्शन करते थे। १२-१२ घंटे तक लाइन में लगते थे, तब कहीं उनकी बारी आती थी। लेकिन इस वर्ष विराट शिष्य-समुदाय को देखते हुए यह भी संभव नहीं था। इस वर्ष आश्रम का स्थायी सत्संग-भवन, आश्रम-परिसर और साबरमती के तट पर निर्मित विशाल अस्थायी सत्संग-पंडाल खचाखच भरा था। फिर भी आश्रम-परिसर में प्रवेश के लिए हजारों-हजारों गुरुभक्त बाहर लंबी-लंबी कतारें लगाये खड़े रहे अपनी बारी के इंतजार में। फलतः सद्‌गुरुदेव स्वयं शिष्यों के बीच गये और सभीको अपनी नूरानी नजरों से निहाल किया।

विराट शिष्य-समुदाय... सभीके चित्त में नजदीक से सद्‌गुरु-दर्शन की उत्कण्ठा-प्रसन्नता... सद्‌गुरुदेव की पावन उपस्थिति से वातावरण में सात्त्विक तरंगें... आत्मशांति की लहरें... स्वास्थ्य की नयी कुंजियाँ... कुछ नये संकेत... नये पाठ... नये प्रयोग... आदि से परिपूर्ण गुरुपूर्णिमा महोत्सव।

९ स्थानों पर गुरुपूर्णिमा दर्शन-सत्संग हुआ। हरेक स्थान पर सनातन धर्म के सपूतों ने सभी व्यवस्थाओं को नन्हा साबित कर दिया। मेघ देवता और सूर्यदेव हर जगह मेहरबान रहे। पूज्यश्री हर स्थान पर भक्तों से निवेदन कर रहे थे : ''मुझे आपके फूल-हार, चीज-वस्तु, रुपये-पैसे नहीं चाहिए। केवल तुम्हारी नासमझी मुझे दे दो व मेरे गुरु का प्रसाद लेकर इसी जन्म में मुक्ति का अनुभव कर लो।''

लोगों ने व्यासपीठ के करीब और आश्रम में यत्र-तत्र यह बोर्ड पढ़ा :

''चीज-वस्तु, फल-फूल, पूजा-भेंट रखना मना है।''
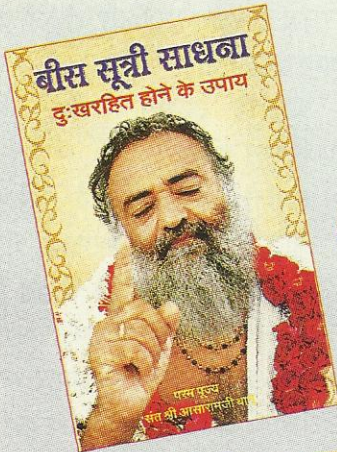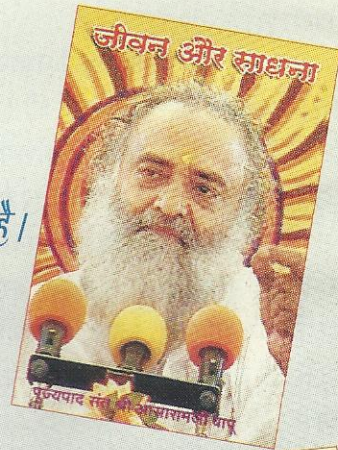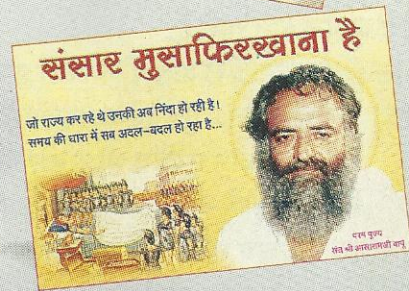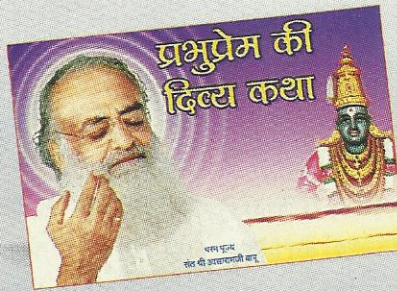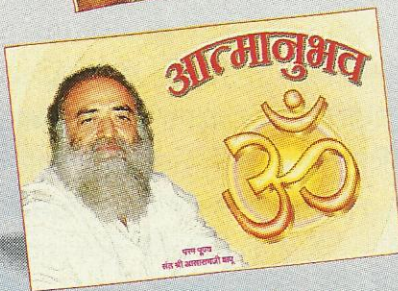
५ ऑडियो कैसेट का मूल्य रु. १०० (डाकखर्च सहित रु. १४०)

मनीऑर्डर अथवा डी.डी. भेजते समय कैसेट का नाम अवश्य लिखें।

पता : सत्साहित्य विभाग, संत श्री आसारामजी महिला उत्थान आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, पिन. ३८०००५.

आत्मसाक्षात्कार दिवस :
२४ सितम्बर
मूल्य : रु. ६/-
अंक : १६५ सितम्बर ०६
आसोज सुद दो दिवस,
संवत् बीस इक्कीस।
मध्याह्न ढाई बजे,
मिला ईस से ईस ।।
संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित
ऋषि प्रसाद
हिन्दी
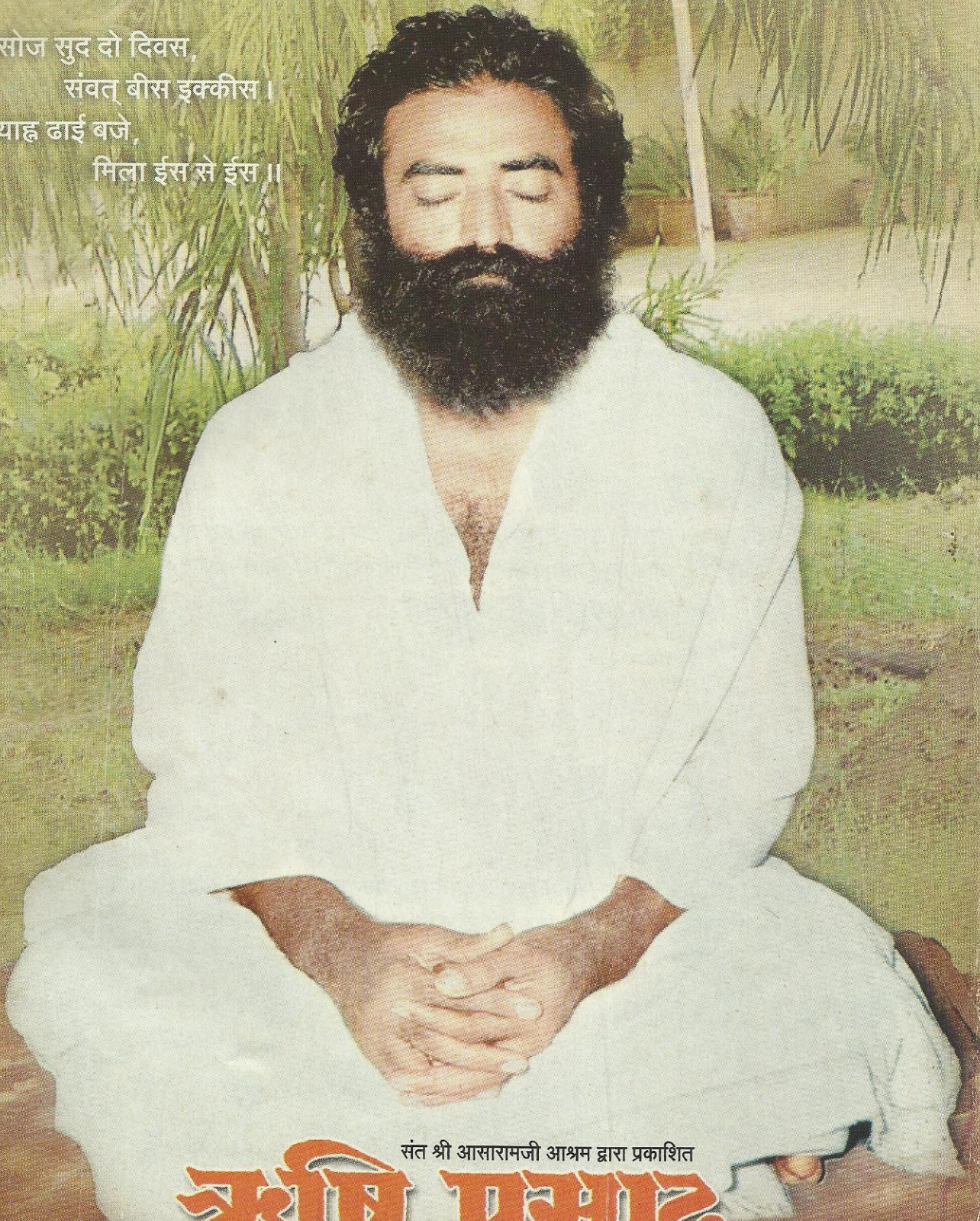
हरखपुरा जि. महाराजगंज (उ.प्र.) में अनाज, वस्त्र, दक्षिणा व भोजन का वितरण तथा अनगुल (उड़ीसा) में प्रतिमाह अनाज-वितरण ।

खिर्वा रोड, मेरठ आश्रम (उ.प्र.) द्वारा मिठाई, बर्तन, वस्त्र, टोपी व नकद दक्षिणा का वितरण तथा जामनेर समिति जि. जलगाँव (महा.) द्वारा प्रति सप्ताह गरीबों में भोजन-प्रसाद वितरण ।

पंचकूला (हरि.) में संकीर्तन यात्रा तथा अदोनी जि. करनुल (आं.प्र.) के विद्यार्थियों में नोटबुक, पेन, पेंसिल, रबर एवं 'बाल संस्कार' पुस्तक का वितरण ।

जोधपुर (राज.) में नशीले पदार्थों की होली तथा धनबाद (झारखण्ड) के अस्पताल में फल, दूध व सत्साहित्य वितरण ।

वर्ष : १७ अंक : १६५ सितम्बर २००६ भाद्रपद-आश्विन वि.सं. २०६३ मूल्य : रु. ६/-

ऋषि प्रसाद

इस अंक में

'संत आसारामजी वाणी' प्रतिदिन सुबह ७-०० बजे ।

'परम पूज्य लोकसंत श्री आसारामजी बापू की अमृतवर्षा' रोज दोप. २-०० बजे व रात्रि ९-५० बजे ।

'संत श्री आसारामजी बापू की अमृतवाणी' दोप. २-४५ बजे । आस्था इंटरनेशनल भारत में दोप. ३.३० से । यू.के. में सुबह ११.०० से ।

रोज सुबह ६-३० बजे

पृष्ठ : २०

मार्ग अनेक, लक्ष्य एक

पृष्ठ : २२

स्वामी : संत श्री आसारामजी आश्रम
प्रकाशक और मुद्रक : श्री कौशिकभाई वाणी
प्रकाशन स्थल : श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-५.
मुद्रण स्थल : दिव्य भास्कर, भास्कर हाऊस, मकरबा, सरखेज-गांधीनगर हाईवे, अहमदाबाद - ३८००५१
सम्पादक : श्री कौशिकभाई वाणी
सहसम्पादक : डॉ. प्रे. खो. मकवाणा
श्रीनिवास

सदस्यता शुल्क

भारत में

(१) वार्षिक	: रु. ५५/-
(२) द्विवार्षिक	: रु. १००/-
(३) पंचवार्षिक	: रु. २००/-
(४) आजीवन	: रु. ५००/-

नेपाल, भूटान व पाकिस्तान में

(१) वार्षिक	: रु. ८०/-
(२) द्विवार्षिक	: रु. १५०/-
(३) पंचवार्षिक	: रु. ३००/-
(४) आजीवन	: रु. ७५०/-

अन्य देशों में

(१) वार्षिक	: US $ 20
(२) द्विवार्षिक	: US $ 40
(३) पंचवार्षिक	: US $ 80
(४) आजीवन	: US $ 200

ऋषि प्रसाद (अंग्रेजी)	वार्षिक	पंचवार्षिक
भारत में	१२०	५००
नेपाल, भूटान व पाक में	१७५	७५०
अन्य देशों में	US $ 20	US $ 80

कार्यालय : 'ऋषि प्रसाद', श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-५.
फोन : (०७९) २७५०५०१०-११.
e-mail : ashramindia@ashram.org
web-site : www.ashram.org

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्र-व्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक अथवा सदस्यता क्रमांक अवश्य लिखें।

Subject to Ahmedabad Jurisdiction

सर्व विद्याओं की आश्रयभूत : ब्रह्मविद्या

● बापूजी के सत्संग-प्रवचन से

सभी विद्याएँ ब्रह्मविद्या में समायी हैं। श्रुति कहती है :

यस्मिन् विज्ञाते सर्वं विज्ञातं भवति।

'जिस एक को जान लेने से सबका ज्ञान हो जाता है।'

उस ब्रह्मविद्या के लिए शास्त्रों में वर्णन आता है :

स्नातं तेन सर्वं तीर्थं दातं तेन सर्वं दानम्।
कृतं तेन सर्वं यज्ञं
येन क्षणं मनः ब्रह्मविचारे स्थिरं कृतम्॥

जिसने मन को ब्रह्मज्ञान, ब्रह्मविचार में लगाया, उसने सारे तीर्थों में स्नान कर लिया, सारे दान कर दिये तथा नौचण्डी, सहस्रचण्डी यज्ञ, वाजपेय यज्ञ, अश्वमेध आदि सारे यज्ञ कर डाले।

जैसे कुल्हाड़ा लकड़ी को काटकर अलग-अलग कर देता है, ऐसे ही सर्व दुःखों, चिंताओं और शोकों को काट दे ऐसी है यह ब्रह्मविद्या।

यह विद्या या तो सत्पात्र पुत्र को दी जाती है या सत्‌शिष्य को। जो सृष्टि के कर्ता हैं, भुवनों के भोक्ता हैं उन ब्रह्माजी ने यह विद्या अपने पुत्र को दी थी। 'अथर्ववेद' अंतर्गत 'मुण्डकोपनिषद्' के प्रथम मुण्डक, प्रथम खण्ड, प्रथम मंत्र के तीसरे व चौथे चरण में वर्णन आता है :

स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठा-
मथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह।

'ब्रह्मांजी ने अपने ज्येष्ठ पुत्र अथर्वा को समस्त विद्याओं की आश्रयभूत ब्रह्मविद्या का उपदेश दिया।'

ब्रह्माजी ने कहा : ''बेटा ! तुझे जो माँगना है माँग ले।''

अथर्वा ने कहा : ''पिताजी ! मैं क्या माँगूँ ? आप सृष्टि के रहस्यों को जानते हैं। जो मेरे हित में है, वही आप दीजिये।''

यह सुनकर ब्रह्माजी प्रसन्न हो गये कि मेरा बेटा अपनी चाह का दास नहीं है। वह मेरे ज्ञान के अनुसार उन्नत होना चाहता है।

ब्रह्माजी का ज्ञान क्या होगा ? हर पिता की भावना रहती है कि मेरा बेटा सर्वोपरि हो, सर्वश्रेष्ठ हो। उन बेटों का दुर्भाग्य है जो माता-पिता की भावनाओं को समझ नहीं पाते। उन बेटियों और बहुओं का दुर्भाग्य है, जो माता-पिता, सास-ससुर एवं गुरु की उदारता का, कृपा का तथा उन्नति के शुभ संकल्प का फायदा नहीं ले पाते।

सबसे बड़ा सुहृद (मित्र) कौन है ?- परमात्मा।

फरियाद करते हैं : 'माँ बोल-बोल करती है... फलाने मेरे को रोकते-टोकते हैं...' माँ, पिता या गुरु आपको रोकते-टोकते हैं तो आपके हित के लिए, आपके विकास के लिए बेटे ! माता-पिता आपके हितैषी हैं। यह पक्का कर लो।

आपको चाटुकारी अच्छी लगेगी, खुशामद अच्छी लगेगी, फँसानेवालों की मीठी बातें अच्छी लगेंगी लेकिन मुक्त करनेवाले की कटु बात अच्छी लगने लग जाय तो समझो आप बुद्धिमान हो, नहीं तो मूर्ख हो।

ब्रह्माजी अपने बेटे को अतल, वितल, तलातल, रसातल अथवा भूमंडल का सम्राट बना सकते थे, स्वर्ग का राज्य दे सकते थे, परंतु नहीं दिया क्योंकि संसार की सुख-सुविधाएँ भोक्ता को खोखला कर देती हैं। स्वर्ग का सुख भी पुण्य का नाश करके अंत में गिरा ही देता है।

'श्रीमद्भगवद्गीता'(९.२१) में भी आया है कि 'पुण्य क्षीण होने पर मृत्युलोक में आते हैं।'

इसलिए महाबुद्धिमान सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी ने अपने पुत्र को सभी विद्याओं में श्रेष्ठ ब्रह्मविद्या दी, अपने आत्मसाम्राज्य का उपदेश देकर अथर्वा को ब्रह्मज्ञानी बनाया। ब्रह्माजी की कितनी सूक्ष्म दृष्टि थी !

शास्त्र वचनामृत

ॐ श्रद्धां प्रातर्हवामहे श्रद्धां मध्यन्दिनं परि ।
श्रद्धां सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धे श्रद्धापयेह नः ॥

'हमारे द्वारा प्रातः श्रद्धा का आह्वान किया जाता है, दोपहर में एवं सायंकाल में भी श्रद्धा का आह्वान किया जाता है । हे श्रद्धा देवि ! आप हमें इस संसार में श्रद्धावान बनाइये ।' **(ऋग्वेद : १०.१५१.५)**

सर्वेषामपि पुण्यानां सर्वेषां श्रेयसामपि ।
सर्वेषामपि यज्ञानां जपयज्ञः परः स्मृतः ॥

'समस्त पुण्यों, श्रेय के सम्पूर्ण साधनों और समस्त यज्ञों में जपयज्ञ को ही सर्वोत्तम माना गया है ।'
(स्कंद पुराण, ब्रा. ब्रह्मो. खण्ड : १.७)

प्रमादादपि संस्पृष्टो यथानलकणो दहेत् ।
तथौष्ठपुटसंस्पृष्टं हरिनाम हरेदघम् ॥

'जैसे आग की चिनगारी भूल से भी छू जाय तो वह जला ही देती है, उसी प्रकार होंठों से हरिनाम का स्पर्श होते ही वह समस्त पापों को हर लेता है ।'
(स्कंद पुराण, काशी खण्ड, पू. : २१.५७)

किमत्र बहुनोक्तेन सर्वकामफलस्पृहः ।
कृष्णाय नम इत्येवं मन्त्रमुच्चारयेद् बुधः ॥
कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने ।
प्रणतक्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः ॥

'इस विषय में बहुत कहने की क्या आवश्यकता, जो सब कामनाओं का फल प्राप्त करना चाहता हो, वह विद्वान मनुष्य '**श्रीकृष्णाय नमः**' इस मंत्र का उच्चारण करता रहे । सबको अपनी ओर खींचनेवाले कृष्ण, सबके हृदय में निवास करनेवाले वासुदेव, पाप-ताप को हरनेवाले श्रीहरि परमात्मा तथा प्रणतजनों का क्लेश दूर करनेवाले भगवान गोविंद को बारंबार नमस्कार है ।' **(पद्म पुराण, उत्तर खण्ड : २७९.१०६, १०७)**

इदमेव हि माङ्गल्यमिदमेव धनार्जनम् ।
जीवितस्य फलं चैतद् यद्दामोदरकीर्तनम् ॥

'भगवान दामोदर के गुणों का कीर्तन ही मंगलमय है, वही धन का उपार्जन है तथा वही इस जीवन का फल है ।' **(पद्म पुराण, पाताल खण्ड : ९२.१२)**

श्रद्धा और विवेक
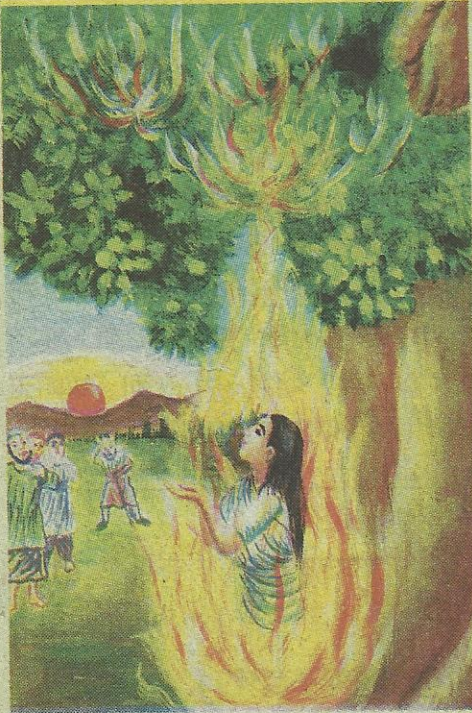
● बापूजी के सत्संग-प्रवचन से

सूर्य की किरणें उदय हो रही थीं । उसने सूर्यदेव को कहा कि 'मुझे आप ही अग्नि दो ।' और अग्नि की ऐसी भभक-भभक लपटें पैदा हुईं कि जिस पीपल वृक्ष के पास खड़े होकर उसने सूर्य से अग्नि माँगी थी, वह पीपल आधा जल गया । वहाँ के मुसलमान लोगों ने बताया कि यह दृश्य हमने अपनी आँखों से देखा है ।

मनुष्य-जीवन में श्रद्धा और विवेक - ये दो चीजें ईश्वरप्रदत्त हैं । खान-पान का विवेक, औषध का विवेक- शरीर को चलाने का यह सामान्य विवेक तो कीड़े-मकोड़े, पशु-पक्षियों के पास भी है परंतु मनुष्य को वह विवेक दिया गया है कि असत् में से सत् को जान ले, अनित्य से नित्य को अलग कर ले, मरणधर्मा से अमर को पहचान ले, कर्तृत्व-भोक्तृत्व से अकर्तृत्व-अभोक्तृत्व को पहचान ले । दही से मक्खन निकाल लेना, इतना विवेक तो गृहिणी और नौकर लोगों को भी है परंतु असत्, जड़, दुःख रूप नाम और रूप से सत्-चित्-आनंद स्वरूप ईश्वर को खोज लेना यह विवेक की बहादुरी है ।

ऐसा विवेक जगाना है तो क्या करें ? जाने हुए असत् के संग का त्याग कर दो । 'शरीर पहले नहीं था, बाद में नहीं रहेगा, अभी भी नहीं की तरफ जा रहा है तो मैं शरीर नहीं हूँ, शरीर का नाम भी मैं नहीं हूँ ।' इससे बहुत परिश्रम बच जायेगा, बहुत सारी झंझट और कर्मजाल बुनने की गलती से रक्षा होगी । जाने हुए असत् के संग को आप मन से जितना हटाते जाओगे, उतना ही वासना के वेग से आपकी रक्षा होगी । आप जो भी कर्म करो, वासना को पोसने के लिए नहीं, धर्म-अनुसार करो । वासना के पेट में भगवद्-प्राप्ति की माँग डाल दो, बड़ा भारी कल्याण होगा, परम मंगल होगा ।

अगर अपना विवेक नहीं है तो विचारें कि 'रामजी होते तो क्या करते ? बापूजी होते तो गुरुजी से कैसा व्यवहार करते ? राजा जनक होते तो गुरुजी की बात का कितना आदर करते ?' ऐसे ही पत्नी है तो वह 'सीताजी होतीं तो क्या करतीं ?' पति है तो 'भगवान राम होते तो अपनी पत्नी के लिए क्या करते ?' भाई हो तो 'लक्ष्मणजी होते तो कैसा करते ?' इस प्रकार पूर्व के, वर्तमान के और शास्त्रवर्णित पुरुषों के अनुसार अपने व्यवहार को नियंत्रित कर दो तो बहुत कष्टों से बच जाओगे और कर्म में निखार आ जायेगा । श्रेष्ठ पुरुषों

से आदरपूर्वक मैत्री, अपने से छोटों से करुणापूर्ण व्यवहार, मंगल कार्यों का अनुमोदन तथा जो निपट निराले हैं उनसे न दुश्मनी न दोस्ती बल्कि उनकी उपेक्षा। जिस मान, बड़ाई, यश के लिए दुनिया भागी-भागी फिरती है, वे आपके पीछे-पीछे घूमेंगे। यह आपको सारी सफलताओं की कुंजी बता रहा हूँ। ये जागतिक सफलताएँ तो क्या हैं, जैसे भगवान नारायण, शिवजी, ब्रह्माजी अपने सत्-चित्-आनंद स्वरूप में स्थित रहते हैं, वहाँ तक आप पहुँच जाओगे।

भगवान श्रीकृष्ण, भगवान विष्णु अथवा भगवान शिवजी के दर्शन हो जायें फिर भी असत्, जड़, दुःख रूप शरीर से अपने 'मैं' को पृथक् नहीं जाना तो दुर्भाग्य चालू रहेगा। भगवान श्रीकृष्ण के दर्शन तो शकुनि ने भी किये थे, मोहम्मद पैगम्बर के दर्शन भी कइयों ने किये थे, जीसस के दर्शन उनको क्रोस पर कील ठोकनेवालों ने भी किये थे। क्या हो गया ? विवेक के बिना भगवान नारायण के पार्षद जय-विजय, हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु बन गये; कुम्भकर्ण और रावण बन गये। लेकिन तत्त्वज्ञान का वह विवेक जग गया तो भगवान को बुलाने की मेहनत नहीं करनी पड़ेगी। भगवान को कष्ट नहीं देना पड़ेगा, भगवान जिससे भगवान हैं उसमें आप पहुँच जाओगे। यह बहुत ऊँचा साधन है, बहुत ऊँचा नजरिया है।

...तो जाने हुए असत् के संग का त्याग करो। बोले : 'त्याग नहीं होता है। जानते हैं बुरा है फिर भी मेरे में काम है, मेरे में क्रोध है, मेरे में यह दुर्गुण है महाराज !' इसमें निराश होने की जरूरत नहीं है, उससे भिड़ने की जरूरत नहीं है, उससे उपराम हो जाओ बस। जैसे, आपका घर सड़क पर है। सड़क पर अच्छा यातायात जाता है, बीच का जाता है या हलका जाता है। आप अच्छे से भी नहीं चिपकते, बुरे से भी नहीं चिपकते, उपराम हो जाते हो, उपेक्षा कर देते हो। इसमें आपका क्या बिगड़ता है ? ऐसे ही अच्छा कर्म होने पर अपने में अच्छेपने का अहंकार लाओगे तो अच्छा कर्म भी बुरा हो जायेगा। बुरी वासना आती है तो 'बुरी वासना मुझमें है' या अच्छे विचार आते हैं तो 'अच्छाई मुझमें है' - इधर ध्यान ही मत दो। अच्छाई भले बढ़े किंतु 'अच्छाई मुझमें है'- ऐसा मत सोचो। बुराई मन में है, उसको सहयोग न दो। अपनेको ईश्वर-चिंतन में लगाओ। अपनेको ऐसा व्यस्त रखो कि बुरी आदतें, बुरा संग, बुरे माहौल से रक्षा हो जाय। कातरभाव से प्रार्थना करो। अगर द्वेष से बुराई करते हो तो प्राणायाम, धारणा, ध्यान से द्वेष शांत होगा। धर्म-अनुसार प्रवृत्ति करो, वासना को महत्त्व न दो। प्राप्त विवेक का आदर करने से विवेक बढ़ता जायेगा।

मिली हुई जो योग्यता है उसे अपनी मत मानो। 'जो भी योग्यता है, जो भी सत्य है वह हे सत्यस्वरूप ईश्वर ! तेरा है। जो असत् है वह देह का और अहंकार का है। अब मैं अहंकार और देह नहीं हूँ, मैं तेरा हूँ।' इस प्रकार ईश्वर से अपनापन स्थापित करने से जो रक्षा होती है, जो लाभ होता है वह अपने बल से साधन करने से नहीं होता। वास्तव में हम ईश्वर के थे, ईश्वर के हैं और ईश्वर हमको अपने से अलग कर नहीं सकते। भगवान हमको अलग नहीं कर सकते हैं इतना विवेक हममें भले नहीं है, हम नहीं जान पाते लेकिन महापुरुषों के अनुभव में श्रद्धा करते हैं, शास्त्र में श्रद्धा करते हैं तो भी काम बन जायेगा। जिनके पास विवेक कम है उनके पास दूसरा साधन है - श्रद्धा। श्रद्धा वह बल है जिससे कि जो हम नहीं कर सकते परंतु जिन्होंने किया है उनकी समझ के अनुसार सहमत होकर भी फायदा उठा सकते हैं।

श्रद्धा बिना धर्म नहिं होई।

(श्रीरामचरित. उ.कां. : ८९.२)

सारे धर्मों का मूल श्रद्धा है। तो सुने हुए ईश्वर-तत्त्व में, ईश्वर के विधान में आस्था करो।

नैनीताल के पास हरदोई जिले (उ.प्र.) के इकनोरा गाँव में एक परिवार रहता था। उस परिवार

की लड़की का पति कहीं दूर था और लड़की अपने मामा के यहाँ आयी थी । पति बीमार हुआ । समाचार आया कि बीमारी बढ़ गयी है । फिर पता चला कि पति चल बसा । वह सोचने लगी : 'मैं पति की अर्धांगिनी हूँ, पति के बिना अब शरीर रख के क्या करूँगी ?' सतियों का साहित्य या चरित्र पढ़ा होगा । घरवालों को कहा :

''अब मैं इतने मील दूर पहुँचूँगी उसके पहले तो उनका अग्नि-संस्कार हो जायेगा । मैं उनके साथ चिता पर तो नहीं जा सकती, अतः यहीं अपनी चिता...'' घरवालों ने कहा : ''नहीं ।''

रात बीती सोचते-विचारते कि 'मैं अब क्या करूँ ?' प्रभात में घर का जो दीया जल रहा था उसके सामने उँगली रख दी कि 'जल जा ।' तो जैसे मोमबत्ती जलती है ऐसे उँगली भभुक-भभुक जलने लगी । कितना मनोबल ! घरवालों को बुलाया और कहा : ''देखो, मेरे को बाहर कर दो, नहीं तो तुम्हारा सारा घर जल जायेगा ।'' घरवालों ने कहा : ''हाँ, तू बाहर जा । हमारा घर न जले ।'' उसने दीवार पर अपनी उँगली झटका मार के, रगड़ के बुझा दी । करपात्रीजी ने कहा : 'मैंने वह निशान देखा है ।' बाहर गयी, बोली : ''अब लकड़ी और अग्नि दो ।'' घरवालों ने कहा : ''लंकड़ी, अग्नि तो हम नहीं देंगे, चाहे कुछ भी हो जाय ।''

सूर्य की किरणें उदय हो रही थीं । उसने सूर्यदेव को कहा कि 'मुझे आप ही अग्नि दो ।' और अग्नि की ऐसी भभक-भभक लपटें पैदा हुईं कि जिस पीपल वृक्ष के पास खड़े होकर उसने सूर्य से अग्नि माँगी थी, वह पीपल आधा जल गया । सुप्रसिद्ध करपात्रीजी महाराज ने कहा कि वहाँ के मुसलमान लोगों ने बताया कि यह दृश्य हमने अपनी आँखों से देखा है । यह बात रामसुखदासजी.महाराज ने कही, उनके ग्रंथों में है ।

माने हुए में कितनी अविचल आस्था कि 'मैं सती हूँ और मैं जो चाहूँगी ऐसा होगा ।' पातिव्रत्य था, जीवन भर पति के सिवाय किसीमें भी पुरुषबुद्धि नहीं की, भोगबुद्धि नहीं की । विशेष कुछ पढ़ी-लिखी नहीं थी लेकिन माने हुए, जाने हुए, सुने हुए में आस्था थी । आप इस सती जैसी आस्था न करो तो कम-से-कम सुने हुए में यह आस्था करो कि 'शरीर बदलता है । बचपन बदल गया, जवानी बदल गयी, दुःख बदल गये, सुख बदल गये किंतु कोई ऐसा है जो नहीं बदला । वह अभी भी है ।' यह आपका भी अनुभव है । इसमें आस्था करना । जो अभी है वह मरने के बाद भी चलेगा । असत् शरीर में से सत् को जान लो, अपने साथ मिला लो । शरीर की मौत आये तब भी समझ लेना कि 'मेरी मौत नहीं होती ।' मन में भय आये तो समझना कि 'मुझे भय नहीं है, मन में भय है ।'

स्थूल, सूक्ष्म और कारण - इन तीन शरीरों में से अपने 'मैं' को जानना है, अपने सत् तत्त्व को जानना है । स्थूल शरीर में बीमारी आये तो 'बीमारी मुझमें नहीं ।' सूक्ष्म शरीर में काम, क्रोध, भय, चिंता आयें तो 'ये मुझमें नहीं हैं ।' कारण शरीर में निद्रा आये, बेहोशी आये अथवा प्राणायाम आदि करके, धारणा-ध्यान करके समाधि आये तो 'यह भी मुझमें नहीं है । इन तीनों शरीरों में जो स्थितियाँ होती हैं, उनको जो जानता है वह मैं हूँ ।' तो आप ब्रह्मा हो गये ! आप विष्णु हो गये ! आप शिव हो गये ! आप 'मैं', 'स्व-स्वरूप' में नित्य जगे-जगाये हो । जो स्वतःसिद्ध है वह परमात्मा है और जो साधन से सिद्ध है वह महात्मा है । परमात्मा तो सुलभ है लेकिन उसका अनुभव करनेवाला दुर्लभ है ।

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
(गीता : १८.६१)

ईश्वर सबके हृदय में है, सदा है, सर्वत्र है पर उसका अनुभव जो करेगा वह विवेक से करेगा । असत् में से सत् को 'मैं-मेरा' मान लेना - यह बहुत ऊँचा साधन है । यह किये बिना चाहे कितने ही वरदान मिल जायें, कितने ही जन्मों में कितनी ही ऊँचाइयाँ मिल जायें परंतु छूट जायेंगी । जब हिरण्यकशिपु और रावण का सब कुछ छूट गया तो आपका-हमारा कब तक

रहेगा ? तो छूटनेवाले में जो अछूट छुपा है, अनित्य में जो नित्य छुपा है, नश्वर में जो शाश्वत छुपा है उस अपने 'मैं' को मैं रूप से जान लो ।

बहूनां जन्मनामन्ते... बहुत जन्मों की कोई यात्रा है, पुण्याई है तभी ऐसा ज्ञान होता है ।

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते ।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ।।

'बहुत जन्मों के अंत के जन्म में तत्त्वज्ञान को प्राप्त पुरुष, सब कुछ वासुदेव ही है - इस प्रकार मुझको भजता है, वह महात्मा अत्यंत दुर्लभ है ।'

(गीता : ७.१९)

परमात्मा बोलते हैं : मैं तो सुलभ हूँ परंतु ऐसा अनुभव करनेवाला महात्मा दुर्लभ है ।

तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ।
(गीता : ८.१४)

जो नित्ययुक्त हैं उनके लिए मैं सुलभ हूँ पर ऐसा अनुभव करनेवाला महापुरुष दुर्लभ है।

मनुष्याणां सहस्रेषु हजारों मनुष्यों में **कश्चिद्यतति सिद्धये ।** कोई एक मेरी प्राप्ति के लिए यत्न करता है। बाकी सब फँसने के रास्ते चल रहे हैं । 'मकान बनाओ, दुकान बनाओ, इज्जत बनाओ, आबरू बनाओ, यह बनाओ, वह बनाओ, बनाओ-बनाओ-बनाओ...' ...प्रवृत्ति-प्रवृत्ति... सतत प्रवृत्ति में निज विवेक का प्रकाश ही नहीं होता कि 'आखिर कब तक ? संग्रह कब तक ? भोग कब तक ? संयोग का अंत वियोग में है, संग्रह का अंत विनाश में है, भोग की परिणति रोग में है ।' यह विवेक ही नहीं होता बेचारों को । अपना विवेक इतना ऊँचा करो कि अपनी मुक्ति का अनुभव हो जाय ।

ये जो दो महान चीजें मिली हैं - विवेक और श्रद्धा, इनका फायदा उठाओ और जाने हुए असत् के संग का त्याग करके सब दुःखों के सिर पर पैर रखकर इसी जन्म में मुक्ति का अनुभव कर लो, इतना ही मैं चाहता हूँ । समय बड़ा कीमती है और सार-में-सार तथा स्थाई उपलब्धि है यह।

जीना कैसे ?

कहीं रहने का यह नियम है कि उपयोगी, उद्योगी और सहयोगी बनकर रहना। जो उपयोगी, उद्योगी और सहयोगी होकर रहता है उसे सभी चाहते हैं और अनुपयोगी, अनुद्योगी और असहयोगी को सभी धिक्कारते हैं। मुझे एक संत ने कहा : ''जहाँ कहीं भी रहना, वहाँ आवश्यक बनकर रहना। वहाँ ऐसा काम करो, इतना काम करो कि वे समझें कि तुम्हारे बिना उनका काम रुक जायेगा। वे तुम्हें अपने लिए आवश्यक समझें। कहीं भी बोझ बनकर मत रहो।''

पहली बात - शरीर को ठीक रखना चाहिए। शरीर में गड़बड़ी होगी तो कोई साथ नहीं देगा- न पुत्र, न पिता, न पत्नी।

दूसरी बात - निकम्मे रहने का स्वभाव नहीं डालना चाहिए। पहले कुछ लोग इसे पसंद कर सकते हैं किंतु वे साथ नहीं देंगे । इसलिए सदा कर्मठ रहना चाहिए।

तीसरी बात - अपने भोग एवं आराम पर अधिक खर्च नहीं करना चाहिए। मात्र जीवन-निर्वाह के लिए खर्च करना चाहिए; स्वाद पर, मजे पर निर्भर नहीं रहना चाहिए। स्वाद के लिए शरीर को ही आगे करके सबको पीछे नहीं करना चाहिए। जब भगवान से प्रेम करना है तो किसी सांसारिक वस्तु के लिए दुःखी होना ही नहीं चाहिए। हृदय में भक्ति की, प्रेम की पूँजी इकट्ठी करो। ऐसे रहो जैसे उदार सेठ का मुनीम रहता है। मुनीम जानता है कि हम पाँच रुपये दान करेंगे तो सेठ प्रसन्न होगा।

उदार पुरुष का सेवक भी उदार होता है। आप ईश्वर के सेवक बनो। फिर आपमें दोष-दुर्गुण रहेंगे तो भगवान का ही अपयश होगा।

बंचक भगत कहाइ राम के।
किंकर कंचन कोह काम के।।

जो कुछ है सो तोर

● बापूजी के सत्संग-प्रवचन से

मुंबई स्टेशन पर रेलगाड़ी खड़ी थी । एक अनजान आदमी आया, उसने ट्रेन में एक बक्सा रखा और एक यात्री को कहा : ''इसे जरा देखना, मैं आता हूँ ।'' समय हुआ, गाड़ी चल पड़ी; कई स्टेशन निकल गये पर वे महाशय आये नहीं । आखिर मुंबई से निकली गाड़ी चेन्नई पहुँची । सब यात्री उतर गये पर बक्सा पड़ा रहा । इस यात्री ने सोचा कि 'वह तो आया नहीं । चलो, अपन ही बक्सा उठवा लो ।' यात्री ने कुली को कहा : ''यह सामान भी ले चलो ।''

सामान के साथ थोड़ा बाहर आया तो लगेजवालों ने पकड़ा कि ''एक टिकट पर इतना सारा वजन है ! किसका माल है ?''

इसने कहा : ''हमारा है ।'' और लगेजवालों ने ७ रुपये ६ आने की एक पर्ची फाड़ दी अतिरिक्त वजन के लिए।

फिर बाहर निकला तो कस्टमवालों ने पूछा : ''इतना माल किसका है ?''

यात्री ने कहा : ''मेरा है ।''

''बक्से में क्या है ?''

''चाबी गुम हो गयी है ।''

''चाबी गुम हो गयी तो क्या है ? खोलो इसे ।''

ताला तोड़ा तो अंदर से लाश निकली । अब वह कितना ही कहे कि 'मेरा नहीं है, मेरा नहीं है...' तो भी दफा ३०२ का मुकदमा बन गया । क्योंकि पहले उसने 'मेरा' कह दिया न ? ऐसे ही हम लोग दिन में न जाने कितनी बार 'मेरा, मेरा, मेरा' कहते हैं और हम लोगों के ऊपर भी ३०२ के न जाने कितने मुकदमे दर्ज हो जाते हैं ! उस यात्री पर ३०२ का केस बनता है तो उसको एक बार उम्रकैद की सजा मिलेगी लेकिन हमको तो ८४-८४ लाख जन्मों की सजा मिलती रहती है । उसने तो एक बक्से को 'मेरा' कहा किंतु हमने तो न जाने कितनों को 'मेरा' कहा होगा । यह मकान मेरा है... यह घर मेरा है... रुपये मेरे हैं... गहने मेरे हैं... गाड़ी मेरी है... । जितना अधिक 'मेरा-मेरा' कहते हैं उतने ज्यादा फँसते जाते हैं। मन में जितना-जितना मेरेपने का भाव अधिक होता है, उतना-उतना यह जीव जन्मों की परम्परा में जाता है और समय की धारा में सब 'मेरा-तेरा... हैशो-हैशो' करते प्रवाहित हो जाता है । जिसका सब कुछ है वह परमात्मा तेरा है, बाकी सब धोखा है ।

देह तो बनी है माया की मिट्टी से, मन बना है माया के सूक्ष्म तत्त्वों से, उस अनन्त की हवाएँ लेकर तू अपने फेफड़े चला रहा है, उस परमात्मा की सत्ता से सूर्य की किरणें तुझे जिला रही हैं । तेरा अपना क्या है ? सच पूछो तो यह सब देनेवाले परमात्मा की अद्भुत करुणा से प्राप्त है ।

मेरा मुझमें कुछ नहीं जो कुछ है सो तोर ।

जिसकी सत्ता से यह सब लीला हो रही है वह परमात्मा तेरा है । तू उसकी ठीक से स्मृति बना ले तो तेरी ज्ञानमयी दृष्टि जिन पर पड़ जायेगी उनका भी कल्याण होने लगेगा ।

सफलता हेतु आवश्यक

शक्ति-उपासना

जगत में शक्ति के बिना कोई काम सफल नहीं होता है । चाहे आपका सिद्धांत कितना भी अच्छा हो, आपके विचार कितने ही सुंदर और उच्च हों लेकिन अगर आप शक्तिहीन हैं तो आपके विचारों का कोई मूल्य नहीं होगा । विचार अच्छा है, सिद्धांत अच्छा है, इसलिए सर्वमान्य हो जाता है ऐसा नहीं है ।

चुनाव में भी देखो तो हार-जीत होती रहती है । ऐसा नहीं है कि यह आदमी अच्छा है इसलिए चुनाव में जीत गया और वह आदमी बुरा है इसलिए हार गया । आदमी अच्छा हो या बुरा, चुनाव में जीतने के लिए जिसने ज्यादा शक्ति लगायी वह जीत जायेगा । वास्तव में किसी भी विषय में जो ज्यादा शक्ति लगाता है वह जीतता है । वकील लोगों को भी पता होगा, कई बार ऐसा होता है कि मुवक्किल चाहे ईमानदार हो चाहे बेईमान परंतु जिस वकील के तर्क जोरदार-जानदार होते हैं वह मुकदमा जीत जाता है ।

ऐसे ही जीवन में विचारों को, सिद्धांतों को प्रतिष्ठित करने के लिए बल चाहिए, शक्ति चाहिए ।

जीवन में कदम-कदम पर कैसी-कैसी मुश्किलें, कैसी-कैसी समस्याएँ आती हैं ! उनसे लड़ने के लिए, उनका सामना करने के लिए भी शक्ति चाहिए और वह शक्ति आराधना-उपासना से मिलती है ।

शक्ति की अधिष्ठात्री देवी हैं माँ जगदम्बा और उनकी उपासना का पर्व है नवरात्रि ।

शास्त्रों में आता है :

या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥

'जो देवी समस्त प्राणियों में शक्तिरूप से स्थित हैं उन माँ जगदम्बा को नमस्कार है, नमस्कार है, नमस्कार है ।'

नवरात्रि को तीन हिस्सों में बाँटा जा सकता है । इसमें पहले तीन दिन तमस् को जीतने की आराधना के हैं। दूसरे तीन दिन रजस् को और तीसरे तीन दिन सत्त्व को जीतने की आराधना के हैं । आखिरी दिन दशहरा है । वह सात्त्विक, रजस् और तमस् तीनों गुणों को जीत के जीव को माया के जाल से छुड़ाकर शिव से मिलाने का दिन है ।

जिस दिन महामाया ब्रह्मविद्या महिषासुररूपी आसुरी वृत्तियों को मारकर जीव के ब्रह्मभाव को प्रकट करती हैं, उसी दिन जीव की विजय होती है इसलिए उसका नाम 'विजयादशमी' है । हजारों-लाखों जन्मों से जीव त्रिगुणमयी माया के चक्कर में फँसा था, आसुरी वृत्तियों के फँदे में पड़ा था । जब महामाया जगदम्बा की अर्चना-उपासना-आराधना की तब वह जीव विजेता हो गया । माया के चक्कर से, अविद्या के फँदे से मुक्त हो गया, वह ब्रह्म हो गया ।

'श्रीमद्देवी भागवत' शक्ति के उपासकों का मुख्य ग्रंथ है । उसमें माँ जगदम्बा की महिमा का वर्णन है । उसमें आता है कि जगत में अन्य जितने व्रत एवं विविध प्रकार के दान हैं वे नवरात्रि व्रत की तुलना कदापि नहीं कर सकते क्योंकि यह व्रत महासिद्धि देनेवाला, धन-धान्य प्रदान करनेवाला, सुख व संतान बढ़ानेवाला, आयु एवं आरोग्य वर्धक तथा स्वर्ग और मोक्ष तक देने में समर्थ है । यह व्रत शत्रुओं का दमन व बल की वृद्धि करनेवाला है । महान-से-महान पापी भी यदि नवरात्रि व्रत कर ले तो संपूर्ण पापों से उसका उद्धार हो जाता है ।

आश्विन शुक्ल प्रतिपदा से नवमी तक शारदीय नवरात्रि पर्व होता है । यदि कोई पूरे नवरात्रि के उपवास-व्रत न कर सकता हो तो सप्तमी, अष्टमी और नवमी - तीन दिन उपवास करके देवी की पूजा करने से वह संपूर्ण नवरात्रि के उपवास के फल को प्राप्त करता है ।

(पूज्य बापूजी का आत्मसाक्षात्कार दिवस : २४ सितम्बर)

अपरोक्ष आनंद की अनुभूति : आत्मसाक्षात्कार

● बापूजी के सत्संग-प्रवचन से

जो सभीके दिलों को सत्ता, स्फूर्ति और चेतना देता है, सब तपों और यज्ञों के फल का दाता है, ईश्वरों का भी ईश्वर है उस आत्म-परमात्म देव के साथ एकाकार होने की अनुभूति का नाम है - साक्षात्कार । यह शुद्ध आनंद व शुद्ध ज्ञान की अनुभूति है । इस अनुभूति के होने के बाद अनुभूति करनेवाला नहीं बचता अर्थात् उसमें कर्तृत्व-भोक्तृत्व भाव नहीं रहता, वह स्वयं प्रकट ब्रह्मरूप हो जाता है ।

जैसे लोहे की पुतली का पारस से स्पर्श हुआ तो वह लोहे की पुतली नहीं रही सोने की हो गयी, ऐसे ही आपकी मति जब परब्रह्म परमात्मा में गोता मारती है तो ऋतंभरा प्रज्ञा हो जाती है । ऋतंभरा प्रज्ञा यानि सत्य में टिकी हुई बुद्धि । ऐसा प्रज्ञावान पुरुष जो बोलेगा वह सत्संग हो जायेगा ।

राजा परीक्षित ने सात दिन में साक्षात्कार करके दिखा दिया... किसीने चालीस दिन में करके दिखा दिया... मैं कहता हूँ कि चालीस साल में भी परमात्मा का साक्षात्कार हो जाय तो सौदा सस्ता है । वैसे भी करोड़ों जन्म ऐसे ही बीत गये साक्षात्कार के बिना ।

तुम इंद्र बन जाओगे तो भी वहाँ से पतन होगा, प्रधानमंत्री बन जाओगे तो भी कुर्सी से हटना पड़ेगा । एक बार साक्षात्कार हो जाय तो मृत्यु के समय भी आपको यह नहीं लगेगा : 'मैं मर रहा हूँ ।' बीमारी के समय भी नहीं लगेगा : 'मैं बीमार हूँ ।' लोग आपकी जय-जयकार करेंगे तब भी आपको नहीं लगेगा कि 'मेरा नाम हो रहा है ।' आप फूलोगे नहीं । निंदक आपकी निंदा करेंगे तब भी आपको नहीं लगेगा कि 'मेरी निंदा हो रही है ।' आप सिकुड़ोगे नहीं, बस हर हाल में मस्त ! देवता आपका दीदार करके अपना भाग्य बना लेंगे पर आपको अभिमान नहीं आयेगा, साक्षात्कार ऐसी उच्च अनुभूति है ।

साक्षात्कार को आप क्या समझते हो ? यह तो ऐसा है कि सब्जी मंडी में कोई हीरे-जवाहरात लेकर बैठा हो । लोग सब्जी लेकर और हीरे-जवाहरात देख के चलते जायेंगे । फिर वहाँ हीरे-जवाहरात खोलकर कोई कितनी देर बैठेगा - ऐसी बात है साक्षात्कार की । संसार

चाहनेवालों के बीच साक्षात्कार की महिमा कौन जानेगा ? कौन सराहेगा ? कौन मनायेगा साक्षात्कार दिवस और कैसे मनायेगा ? इसीलिए जन्मदिन मनाने की तो बहुत रीतियाँ हैं परंतु साक्षात्कार दिवस मनाने की कोई रीति प्रचलित नहीं है । फिर भी सत्शिष्य अपने सद्गुरु का प्रसाद पाने के लिए उनके साक्षात्कार दिवस पर अपने ढंग से कुछ-न-कुछ कर लेते हैं ।

साक्षात्कार पूरी धरती पर किसी-किसीको होता है । साक्षात्कार धन से, सत्ता से, रिद्धि-सिद्धियों से भी बड़ा है । साक्षात्कारी महापुरुष कई धनवान, कई सत्तावान पैदा कर सकते हैं । कई ऐसे महापुरुष हैं जो लोहे से सोना बना दें । ऐसे भी महापुरुष मैंने देखे जो हवा पीकर जीते हैं, उनके पास अदृश्य होने की भी शक्ति है । ऐसे भी संत मेरे मित्र हैं जिनके आगे गायत्री देवी प्रकट हुईं, हनुमानजी प्रकट हुए, सूक्ष्म शरीर से हनुमानजी उनको घुमाकर भी ले आये परंतु इन सभी अनुभवों के बाद भी जब तक इस जीवात्मा को परमात्मा का साक्षात्कार नहीं होता तब तक वह चाहे स्वर्ग में चला जाय, वैकुंठ में चला जाय, पाताल में चला जाय, सारे ब्रह्मांड में भटक ले पर **'निज सुख बिनु मन होइ कि थीरा ।'** आत्मसाक्षात्कार के बिना पूर्ण तृप्ति, शाश्वत संतोष नहीं होगा।

भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन के मित्र थे और सारथी बनकर उसका रथ चला रहे थे, तब भी अर्जुन को साक्षात्कार करना बाकी था । उस आत्मसुख की प्राप्ति अर्जुन को भगवान श्रीकृष्ण के सत्संग से हुई, हनुमानजी को रामजी के सत्संग से हुई । राजा जनक को अष्टावक्र मुनि की कृपा से वह पद मिला और आसुमल को पूज्य लीलाशाह बापूजी की कृपा से आज (आश्विन शुक्ल द्वितीया, आसौज सुद दूज) के दिन वह आत्मसुख मिला था ।

पूर्ण गुरु किरपा मिली, पूर्ण गुरु का ज्ञान ।
आसुमल से हो गये, साँईं आसाराम ॥

इंद्रपद बहुत ऊँचा है लेकिन आत्मसाक्षात्कार के आगे वह भी मायने नहीं रखता । साक्षात्कार के आनंद से त्रिलोकी को पाने का आनंद भी बहुत तुच्छ है । इसीलिए 'अष्टावक्र गीता' में कहा गया है :

यत्पदं प्रेप्सवो दीनाः शक्राद्याः सर्वदेवताः ।
अहो तत्र स्थितो योगी न हर्षमुपगच्छति ॥

'जिस पद को पाये बिना इंद्र आदि सब देवता भी अपनेको कंगाल मानते हैं, उस पद में स्थित हुआ योगी, ज्ञानी हर्ष को प्राप्त नहीं होता, आश्चर्य है ।'

(अष्टावक्र गीता : ४.२)

आत्मसाक्षात्कारी महापुरुष को इस बात का अहंकार नहीं होता कि 'मैं ब्रह्मज्ञानी हूँ... मैं साक्षात्कारी हूँ... इस दुनिया में दूसरा कोई मेरी बराबरी का नहीं है... मैंने सर्वोपरि पद पाया है...'

उस परमात्म-सुख को, परमात्म-पद को पाये बिना, निर्वासनिक नारायण में विश्रांति पाये बिना हृदय की तपन, राग-द्वेष, भय-शोक-मोह व चिंताएँ नहीं मिटतीं । अगर इनसे छुटकारा पाना है तो यत्नपूर्वक आत्मसाक्षात्कारी महापुरुषों का संग करें, मौन रखें, सत्शास्त्रों का पठन-मनन एवं जप-ध्यान करें । निर्वासनिक नारायण तत्त्व में विश्रांति पाने में ये सब सहायक साधन हैं ।

ऐसा नहीं है कि परमात्मा का साक्षात्कार कर लिया तो कोई आपकी निंदा नहीं करेगा, आपके सब दिन सुखद हो जायेंगे । नहीं... परमात्म-साक्षात्कार हो जाय फिर भी दुःख तो आयेंगे ही । भगवान राम को भी चौदह वर्ष का वनवास मिला था । महात्मा बुद्ध हों या महावीर स्वामी, संत कबीरजी हों या नानकदेव, श्री रमण महर्षि हों या श्री रामकृष्ण परमहंस, स्वामी रामतीर्थ हों या पूज्य लीलाशाहजी बापू विघ्न-बाधाएँ तो सभी देहधारियों के जीवन में आती ही हैं लेकिन इनका प्रभाव जहाँ पहुँच नहीं सकता उस आत्मसुख में वे महापुरुष सराबोर होते हैं ।

जैसे जंगल में आग लगने पर सयाने पशु सरोवर में खड़े हो जाते हैं तो आग उन्हें जला नहीं सकती, ऐसे ही जो महापुरुष आत्मसरोवर में आने की कला जान लेते हैं वे संसार की तपन के समय अपने आत्मसुख का विचार कर तपन के प्रभाव से परे हो जाते हैं ।

(दशहरा : २ अक्टूबर २००६)

दशहरा : सर्वांगीण विकास का श्रीगणेश

● बापूजी के सत्संग-प्रवचन से

दशहरा एक दिव्य पर्व है । सभी पर्वों की अपनी-अपनी महिमा है किंतु दशहरा पर्व की महिमा जीवन के सभी पहलुओं के विकास, सर्वांगीण विकास की तरफ इशारा करती है । दशहरे के बाद पर्वों का झुंड आयेगा लेकिन सर्वांगीण विकास का श्रीगणेश कराता है दशहरा ।

दशहरा दश पापों को हरनेवाला, दश शक्तियों को विकसित करनेवाला, दशों दिशाओं में मंगल करनेवाला और दश प्रकार की विजय देनेवाला पर्व है, इसलिए इसे 'विजयादशमी' भी कहते हैं ।

यह अधर्म पर धर्म की विजय, असत्य पर सत्य की विजय, दुराचार पर सदाचार की विजय, बहिर्मुखता पर अंतर्मुखता की विजय, अन्याय पर न्याय की विजय, तमोगुण पर सत्त्वगुण की विजय, दुष्कर्म पर सत्कर्म की विजय, भोग-वासना पर योग और संयम की विजय, आसुरी तत्त्वों पर दैवी तत्त्वों की विजय, जीवत्व पर शिवत्व की और पशुत्व पर मानवता की विजय का पर्व है । आज के दिन दशानन का वध करके भगवान राम की विजय हुई थी । महिषासुर का अंत करनेवाली दुर्गा माँ का विजय-दिवस है - दशहरा । शिवाजी महाराज ने युद्ध का आरंभ किया तो दशहरे के दिन । रघु राजा ने कुबेर भंडारी को कहा कि 'इतनी स्वर्ण मुहरें तू गिरा दे । ये मुझे विद्यार्थी (कौत्स ब्राह्मण) को देनी हैं, नहीं तो युद्ध करने आ जा ।' कुबेर भंडारी ने, स्वर्ण भंडारी ने स्वर्णमुहरों की वर्षा की दशहरे के दिन ।

दशहरा माने पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और अंतःकरण चतुष्टय - इन नौ को शक्ति देनेवाला अर्थात् देखने की शक्ति, सूँघने की शक्ति, चखने की शक्ति, स्पर्श करने की शक्ति, सुनने की शक्ति - पाँच प्रकार की ज्ञानेन्द्रियों की जो शक्ति है यह तथा मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार - चार अंतःकरण चतुष्टय की शक्ति । इन नौ को सत्ता देनेवाली जो परमात्म-चेतना है वह है आपका आत्मा-परमात्मा । इसकी शक्ति जो विद्या में प्रयुक्त हो तो विद्या में आगे बढ़ते हैं, जो बल में लगे तो बल में आगे बढ़ते हैं, भक्ति में प्रयोग हो तो भक्ति में आगे बढ़ते हैं, योग में हो तो योग में आगे बढ़ते हैं और सबमें थोड़ी-थोड़ी लगे तो सब दिशाओं में विकास होता है ।

एक होता है नित्य और दूसरा होता है अनित्य । जो अनित्य वस्तुओं का नित्य वस्तु के लिए उपयोग करता है वह होता है आध्यात्मिक किंतु जो नित्य वस्तु चैतन्य का अनित्य वस्तु के लिए उपयोग करता है वह होता है आधिभौतिक । दशहरा इस बात का साक्षी है कि बाह्य धन, सत्ता, ऐश्वर्य, कला-कौशल होने पर भी जो नित्य सुख की तरफ लापरवाह हो जाता है उसकी क्या गति होती है । अपने राज्य की सुंदरियाँ, अपनी पत्नी होने पर भी श्रीरामजी की सीता देवी के प्रति आकर्षणवाले का क्या हाल होता है ? हर बारह महीने बाद दे दियासलाई... अनित्य की तरफ आकर्षण का यह मजाक है । एक सिर नहीं दस-दस सिर हों, दो हाथ नहीं बीस-बीस हाथ हों तथा नित्य आत्मा को छोड़कर अनित्य सोने की लंका भी बना ली, अनित्य सत्ता भी मिल गयी, अनित्य भोग-सामग्री भी मिल गयी उससे भी जीव को तृप्ति नहीं होती । और, और, और... की भूख लगी रहती है ।

जो नित्य की तरफ चलता है उसको श्रीराम की नाईं अंतर आराम, अन्तर्ज्योति, अन्तर्तृप्ति का अनुभव होता है और जो नित्य को छोड़कर अनित्य से सुख चाहता है उसकी दशा रावण जैसी हो जाती है । इसकी स्मृति में ही शायद हर दशहरे को रावण को जलाया जाता होगा कि अनित्य का आकर्षण हमारे चित्त में न रहे । शरीर अनित्य है, वैभव शाश्वत नहीं है और रोज हम मौत की तरफ आगे बढ़े जा रहे हैं । कर्तव्य है धर्म का संग्रह और धर्म के संग्रह के लिए मनुष्य-जीवन ही उपयुक्त है ।

जीवन जीना एक कला है । जो जीवन जीने की कला नहीं जानता वह मरने की कला भी नहीं जानता और बार-बार मरता रहता है, बार-बार जन्मता है । जो जीवन जीने की कला जान लेता है उसके लिए जीवन जीवनदाता से

मिलानेवाला होता है और मौत मौत के पार प्रभु से मुलाकात करानेवाली हो जाती है । जीवन एक उत्सव है, जीवन एक गीत है, जीवन एक संगीत है । जीवन ऐसे जीयो कि जीवन चमक उठे और मरो तो ऐसे मरो कि मौत महक उठे... आप इसीलिए धरती पर आये हो ।

आप संसार में पच मरने के लिए नहीं आये हैं । आप संसार में दो-चार बेटे-बेटियों को जन्म देकर सासू, नानी या दादा-दादी होकर मिटने के लिए नहीं आये हैं । आप तो मौत आये उसके पहले मौत जिसको छू नहीं सकती, उस अमर आत्मा का अनुभव करने के लिए आये हैं और दशहरा आपको इसके लिए उत्साहित करता है ।

मरो-मरो सब कोई कहे मरना न जाने कोई ।
एक बार ऐसा मरो कि फिर मरना न होई ॥

'दशहरा' माने दश पापों को हरनेवाला । अपने अहंकार को, अपने जो दश पाप रहते हैं उन भूतों को इस ढंग से मारो कि आपका दशहरा ही हो जाय । दशहरे के दिन आप दश दुःखों को, दश दोषों को, दश आकर्षणों को जीतने का संकल्प करो ।

दशहरे का पर्व आश्विन शुक्लपक्ष की दशमी को तारकोदय के समय 'विजय' नाम के मुहूर्त में होता है, जो कि संपूर्ण कार्यों में सिद्धिप्रद है, ऐसा 'ज्योतिनिर्बन्ध' ग्रंथ में लिखा है ।

आश्विनस्य सिद्धे पक्षे दशम्यां तारकोदये ।
स कालो विजयगेहा सर्वकार्यार्थसिद्धये ॥

एक होती है आधिभौतिक सिद्धिप्रदता, दूसरी आधिदैविक और तीसरी होती है आध्यात्मिक । मैं तो चाहता हूँ, आपकी आध्यात्मिक सिद्धि भी हो, आधिदैविक सिद्धि भी हो और संसार में भी आप दीन-हीन होकर, लाचार-मोहताज होकर न जीयें, उसमें भी आप सफल हों - ऐसे आपके तीनों बल - भाव बल, प्राण बल और क्रिया बल विकसित हों ।

आप सामाजिक उन्नति में विजयी बनें, आप स्वास्थ्य में विजयी बनें, आप आध्यात्मिक उन्नति में विजयी बनें, आप राजनैतिक उन्नति में विजयी बनें । मैं भगवान श्रीकृष्ण को ज्यादा स्नेह करता हूँ । श्रीकृष्ण कमाल में भी आगे हैं और धमाल में भी आगे हैं । वे कमाल भी गजब का करते हैं और धमाल भी गजब का करते हैं । घर में थे तो क्या धमाल मचा दी और युद्ध के मैदान में अर्जुन को क्या कमाल का उपदेश दिया ! आचार्य द्रोण के लिए 'नरो वा कुंजरो वा' कहलवाने के लिए युधिष्ठिर को कैसी कमाल की युक्तियाँ देते हैं ! श्रीकृष्ण का जीवन विरुद्ध जीवन से इतना संपन्न है कि वे कमाल और धमाल करते हैं तो पूरे-का-पूरा करते हैं । विजयादशमी ऐसा पर्व है कि आप कमाल में भी सफल हो जाओ और धमाल में भी सफल हो जाओ ।

राजा को अपनी सीमाओं के पार कदम रखने की सम्मति देता है आज का उत्सव । जहाँ भी आतंक है या कोई खटपट है वहाँ आज के दिन सीमा लाँघने का पर्व माना जाता है ।

अपने जीवन में जो विघ्न-बाधाएँ हैं उनको भी दबोचने का यह पर्व माना जाता है । सीमाओं पर शत्रु दिखते हैं, उनकी लड़ाई के साधन बदलते हैं लेकिन शत्रुता तो चली आ रही है । पहले डंडे से चलती थी शत्रुता, फिर तीर-कमान आये, बंदूकें आयीं, तोपें आयीं । अब तो बम और रॉकेट आ गये । साधन बदलते हैं परंतु शत्रुता और मित्रता, राग और द्वेष सृष्टि की परंपरा से चले आ रहे थे, चल रहे हैं और चलते ही रहेंगे । एक राग-द्वेष होता है बाहर के जगत में और दूसरा भीतर चलता है । तो दशहरा... दशों विघ्नों को हराने के लिए आपको सफलता देने का एक पर्व चुन लिया भारतीय वैदिक संस्कृति ने ।

आपका जीवन एकांगी नहीं है । केवल माला घुमाने के लिए जीवन नहीं है, केवल संसार से दब मरने के लिए नहीं है अथवा दूसरों पर हुकूमत करने के लिए नहीं है । जीवन में आपको सर्वांगीण विकसित होना चाहिए । हुकूमत करने का भी बल हो, हुकूमत मानने की भी कला हो, भोजन खाने की भी कला हो, पचाने की भी कला हो, बनाने की भी कला हो, खिलाने की भी कला हो और भोजन से संयम करके उपवास में रहने की कला भी इतनी ही जरूरी है ।

विजयादशमी का यह पर्व जीवन के सभी पक्षों को पोषित करने के लिए है । धर्म, समाज, राजनीति, कला, संस्कृति - सबके अद्भुत मिश्रणवाला अगर कोई पर्व है तो वह दशहरा है। ❋

* शरद ऋतु (२३ अगस्त से २२ अक्टूबर २००६) में पित्त प्रकुपित होता है । पित्त दोष की शांति के लिए शास्त्रकारों ने खीर, घी, घी से बना हलवा, मक्खन , किशमिश सेवन का तथा श्राद्ध कर्म का अवसरोचित विधान किया है । ८ सितम्बर से २२ सितम्बर तक श्राद्ध के दिनों में दूध, चावल या उससे बनी खीर का सेवन पित्तशामक है ।
* मध्याह्न के समय पित्त बढ़ता है । धूप में खुले सिर न चलें, सिर पर टोपी या कपड़ा अवश्य रखें ।
* भय, क्रोध, अधिक उपवास, धूप में घूमने और रात्रि जागरण से पित्त बढ़ता है ।
* इन दिनों तुलसी के ५-७ पत्तों के साथ नीम के ५-१० पत्ते चबाकर खाना और नीम की दातुन करना हितावह है । सप्ताह में कम-से-कम एक दिन हरी या सूखी मेथी, ताजी हल्दी, करेला जैसे कड़वे पदार्थ का सेवन अवश्य करना चाहिए ।
* शरद ऋतु में छोटी हरड़ चूर्ण में समान मात्रा में मिश्री मिलाकर ४ ग्राम मिश्रण प्रातः ताजे पानी से लें तो पित्तजनित विकार शांत होते हैं ।

'ॐ मुं मुकुटेश्वरीभ्यां नमः ।' इस मंत्र के जप से पित्तविकार दूर होता है।

* यह कहावत याद रखें और यदा-कदा प्रयोग करें :

सोंठ शक्कर काली मिर्च,
काला नमक मिलाय ।
नींबू में रखे चूसिये,
पित्त शमन हो जाय ॥
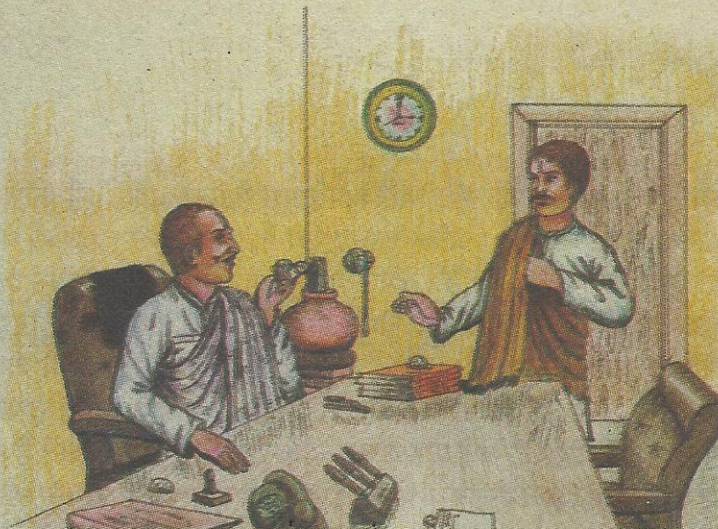
कर्तव्यनिष्ठा

मास्टर सूर्यसेन न केवल निर्भीक बल्कि आदर्शवादी अध्यापक भी थे । जब वे बंगाल के एक स्कूल में नियुक्त थे, तब की यह घटना है । एक बार स्कूल में वार्षिक परीक्षा चल रही थी । जिस परीक्षा-भवन में उन्हें नियुक्त किया गया था, उसी भवन में उस स्कूल के प्रधानाचार्य का पुत्र भी परीक्षा दे रहा था ।

अपने कार्य में दक्ष सूर्यसेन सावधानी से विद्यार्थियों का निरीक्षण कर रहे थे । उनकी नजर नकल कर रहे प्रधानाचार्य के पुत्र पर गयी । सच्चाई को जीवन का आधारस्तंभ माननेवाले सूर्यसेन ने उसे रँगे हाथों पकड़ लिया तथा परीक्षा देने से वंचित कर दिया ।

परीक्षाफल निकला तो वह लड़का अनुत्तीर्ण हो गया । प्रधानाचार्य ने सूर्यसेन को अपने कक्ष में बुलाया । यह जानकर अन्य सभी शिक्षक कानाफूसी करने लगे कि अब सूर्यसेन का पत्ता साफ हुआ समझो ।

इधर जब सूर्यसेन प्रधानाचार्य के कक्ष में पहुँचे तो प्रधानाचार्य ने आशा के विपरीत उनका सम्मान किया और स्नेहवश बोले : ''मुझे गर्व है कि मेरे इस स्कूल में आप जैसा कर्तव्यनिष्ठ व आदर्शवादी शिक्षक भी है, जिसने मेरे पुत्र को भी दंडित करने में संकोच नहीं किया । नकल करते पकड़े जाने के बावजूद यदि आप उसे उत्तीर्ण कर देते तो मैं आपको अवश्य ही नौकरी से बर्खास्त कर देता ।''

''यदि आप मुझे अपने पुत्र को उत्तीर्ण करने के लिए विवश करते तो मैं स्वयं ही इस्तीफा दे देता, जो इस समय मेरी जेब में पड़ा है ।'' मास्टर सूर्यसेन का जवाब सुनकर प्रधानाचार्य गद्‌गद हो उठे । सूर्यसेन के प्रति उनके मन में आदरभाव जगा ।

धन्य हैं ऐसे ईमानदार, गुणपारखी प्रधानाचार्य व धन्य हैं ऐसे आदर्शवादी शिक्षक !

(शरद पूर्णिमा : ६ अक्टूबर २००६)

पर्व मांगल्य

भगवत्शरण स्वीकारें

• बापूजी के सत्संग-प्रवचन से

व्याख्याता के व्याख्यान का, कथाकार की कथा का कोई निश्चित समय होता है पर जो अपने आपमें, अपने आत्मरस में पूर्णतः तृप्त होते हैं उन महापुरुषों के छलकने का कोई निश्चित समय नहीं होता । वे तो बस, जब उनकी मौज आयी छलक पड़ते हैं । कोयल कब, किस पेड़ पर गायेगी उसे नहीं पता, वह नहीं बता सकती, ऐसे ही दिलबर श्रीकृष्ण कब, कहाँ, किस पर छलक जायें उनका कोई पूर्व निश्चित कार्यक्रम नहीं होता ।

भारतीय संस्कृति की ऋषि-परंपरा ही ऐसी है कि ऋषि अपनी कुटिया में अपने नियमों में रहे, जब परमात्मरस से पूर्णतः तृप्त हुए तब शिष्यों के बीच आये, कुछ सत्संग के वचन बोले और चल दिये । ऐसे ही आत्मरस में सराबोर भगवान श्रीकृष्ण ने एक सुहावनी रात्रि में गोपियों के हृदय-प्रदेश में प्रेमामृत-रस छलकाया था ।

'श्रीमद्भागवत' के दशम स्कंध के उनतीसवें अध्याय में शुकदेवजी महाराज परीक्षित को सत्संग सुनाते हुए कहते हैं : ''प्रेमभाव में रमण करनेवाली गोपियों को शरद पूर्णिमा की रात्रि में उनके पिया भगवान श्रीकृष्ण ने बंसी बजाकर अपने पास बुलाया और अधरामृत (भगवद्रस) का पान कराया ।'' इस धरा का जो सुख है वह विकारी सुख है, काम का सुख है परंतु अधरामृत **न धरति इति अधरा** – इस धरा के सुख से परे का जो सुख है, राम का, आत्मा का सुख है । संसारी सुख भोक्ता की शक्तियों का ह्रास करता है और भगवद्-सुख भक्त की बल-बुद्धि बढ़ाता है व मुक्ति के द्वार खोलता है ।

शरद पूर्णिमा की रात्रि का अँधेरा छाये उसके पहले शरद ऋतु ने वन को लताओं एवं रंग-बिरंगे पुष्पों से सुसज्जित कर दिया । नूतन केसर के समान लाल-लाल पूनम का चाँद वन के कोने-कोने में चाँदनी छिटकने लगा । मानों, वह वन को केसरी सुहावनी चदरिया ओढ़ा रहा हो ।

ऐसे मधुमय वातावरण में मधु को भी मधुत्व देनेवाले भगवान श्रीकृष्ण ने गोपियों को शब्दब्रह्म का प्रसाद देने के लिए बंसी पर मन को हरनेवाली **'क्लीं'** बीजमंत्र की मधुर तान छेड़ दी । अब वे गोपियाँ क्या करें ? **उद्धव ! मन न भये दस-बीस, एक था सो गयो श्याम संग... साँवलिया ले गयो रे...**

गोपियाँ भगवान श्रीकृष्ण का मधुर बंसीनाद सुन खिंच-खिंचकर उनकी ओर आने लगीं । श्रीकृष्ण ने उन्हें वापस घर जाने के लिए भिन्न-भिन्न ढंग से उपदेश दिया पर गोपियाँ पूछती हैं : ''आप हमें उपदेश दे रहे हैं कि अपने-अपने घर चली जाओ । आप ही बताओ कहाँ है हमारा घर ?

सभी जीवों का वास्तविक घर तो आनंद, माधुर्य एवं सुख है । हे आनंद, माधुर्य के भंडार ! आप ही तो हमारे घर हैं । आत्मज्ञान में निपुण महापुरुष आपसे ही प्रेम करते हैं क्योंकि आप नित्य प्रिय एवं अपने ही आत्मा हो । अनित्य एवं दुःखद पति-पुत्रादि से हमें क्या प्रयोजन ? आपके उपदेश के अनुसार भी हमें आपकी ही सेवा करनी चाहिए क्योंकि आप ही समस्त शरीरधारियों के सुहृद हो, आत्मा हो और परम प्रियतम हो ।

अब तक हमारा चित्त सांसारिक काम-धंधों में लगा हुआ था। मनमोहन ! आपने हमारे मन को मोह लिया है।

जिसने आपके शब्दब्रह्म का, अधरामृत का, भगवद्रस का पान कर लिया है, उसका मन फिर दूसरी आसक्तियों में नहीं फँसता है । हे श्यामसुंदर ! हमारा जीवन आपके लिए है, हम आपके लिए ही जी रही हैं ।''

गोपियों की करुणा भरी पुकार सुनकर संपूर्ण योगों के स्वामी पीताम्बरधारी भगवान श्रीकृष्ण गले में वनमाला पहने व मुखकमल पर मंद-मंद मुस्कान लिये दो-दो गोपियों के बीच सहसा प्रकट हो गये । हरेक गोपी संग एक श्रीकृष्ण, ऐसे सहस्रों गोपियों के साथ दिव्य रासोत्सव प्रारंभ हुआ ।

स्वर्ग की दिव्य दुंदुभियाँ अपने-आप बज उठीं । स्वर्गीय पुष्पों की वर्षा होने लगी । श्रीकृष्ण जितने ऊँचे स्वर से रासोचित गान गाते, उससे दुगने स्वर में सभी गोपियाँ 'धन्य कृष्ण ! धन्य कृष्ण !!' का उच्चारण करती हुईं रात भर अपने प्रियतम श्यामसुंदर के साथ रास करती रहीं ।

जिस भूमि पर उस रात्रि में रास हुआ, कीर्तन हुआ, आनंद आया, वहाँ की धूलि गोपियों के चरणस्पर्श से 'गोपीचंदन' कहलायी । लोग आज भी उसे ललाट पर लगाते हैं ।

भगवान जीवों पर कृपा करने के लिए ही मनुष्यरूप में प्रकट होते हैं और ऐसी लीलाएँ करते हैं, जिन्हें देख-सुनकर जीव विकारी रस से उपराम होकर भगवद्रस परायण हो जायें ।

राजा परीक्षित ने शुकदेवजी से पूछा : ''गोपियाँ श्रीकृष्ण को अपना परम प्रियतम मानती थीं । वे कोई उन्हें परात्पर परब्रह्म तो मानती नहीं थीं, अंतर्यामी आत्मा तो मानती नहीं थीं । उनका तो भगवान के प्रति जारभाव था, ब्रह्मभाव नहीं था । उनकी दृष्टि भगवान के प्राकृतिक गुणों में ही आसक्त दिखती है कि श्रीकृष्ण के घुँघराले बाल हैं, उनके मुखकमल की कैसी सुंदर छटा है ! कैसी सौम्यता व हँसी है ! कैसी मधुर चितवन है ! ये तो प्राकृतिक गुण हैं, दिखनेवाले गुण हैं । अप्राकृतिक परब्रह्म के सुख का तो उनको पता नहीं । ऐसी स्थिति में उनके लिए गुणों के प्रवाहरूप इस संसार की निवृत्ति कैसे संभव हुई और उन्होंने आंतरिक रस-अधरामृत कैसे पा लिया ?''

श्री शुकदेवजी महाराज कहते हैं : ''चेदिराज शिशुपाल भगवान से द्वेषभाव से जुड़ा था, गोपियाँ जारभाव से जुड़ी थीं, कंस शत्रुभाव से - भय से जुड़ा था । कोई प्रेमभाव से जुड़ा है, कोई किसी भाव से जुड़ा है किंतु सब जुड़े तो परात्पर ब्रह्म से, सच्चिदानंद स्वरूप परमात्मा से ही हैं ।''

आप क्या हैं और भगवान से किस भाव से जुड़े हैं- इसका महत्त्व नहीं है । महत्त्व इसका है कि आप किससे जुड़े हैं । खरबूजा छुरे पर गिरे या छुरा खरबूजे पर गिरे, खरबूजा तो उसे रस ही देगा, ऐसे ही आप किसी भी भाव से भगवान से जुड़ो तो आपको भगवद्रस ही मिलेगा । इस भगवद्रस के बिना सच्ची शांति, सच्चा सुख नहीं मिलता । इसे पाने के लिए जप, ध्यान, सुमिरन तो सहायक हैं परंतु शरद पूनम की रात्रि उनमें चार चाँद लगा देती है । ऐसी मंगल रात्रि में आप भी थोड़ा जप, ध्यान करके भगवत्शरण स्वीकारें और परमेश्वर में गोता मारकर भगवद्-सुख, भगवद्रस उभारें ।

शरद (कोजागरी) पूर्णिमा - विधि तथा महिमा

आश्विन मास की पूर्णिमा को 'कोजागर व्रत' (को जाग्रति-कौन जागता है ?) किया जाता है । उसमें विधिपूर्वक स्नान करके उपवास करे व जितेन्द्रिय भाव से रहे । सायंकाल में चन्द्रोदय होने पर मिट्टी के घृतपूर्ण १०० दीपक जलाये । इसके बाद घी मिलायी हुई खीर तैयार करे और बहुत-से पात्रों में उसे डालकर चन्द्रमा की चाँदनी में रखे । खीर जितनी फैली हुई होगी उतनी अधिक प्रभावशाली होगी। जब एक पहर बीत जाय तब लक्ष्मीजी को वह सब अर्पण करे । तत्पश्चात् भक्तिपूर्वक ब्राह्मणों को वह खीर-भोजन कराये और उनके साथ ही मांगलिक गीत तथा मंगलमय कार्यों द्वारा जागरण करे । उस रात में देवी महालक्ष्मी अपने करकमलों में वर और अभय लिये निशीथकाल (मध्यरात्रि) में संसार में विचरती हैं और मन-ही-मन संकल्प करती हैं कि 'इस समय भूतल पर मेरी पूजा में लगे हुए मनुष्य को मैं आज धन दूँगी ।' प्रतिवर्ष किया जानेवाला यह व्रत लक्ष्मीजी को संतुष्ट करनेवाला है ।

(नारद पुराण)

महान भगवद्भक्त प्रह्लाद

(गतांक से आगे)

सारी प्रजा दैत्यर्षि प्रह्लादजी के समान राजा पाकर अपने को धन्य-धन्य मानने लगी । इस खुशी में जो दान-पुण्य किया गया, उसका वर्णन करना लेखनी की शक्ति के बाहर है । राज्याभिषेक के पश्चात् ब्रह्मादि देवता, महर्षिगण एवं विद्वद्गण महाराज प्रह्लाद को आशीर्वादपूर्वक अनेकानेक वरदान देकर अपने-अपने स्थान को चले गये । इतना बड़ा भव्य कार्य भी कहानीमात्र रह गया ।

उमा कहउँ मैं अनुभव अपना ।
सत हरि भजनु जगत सब सपना ॥

दैत्यर्षि प्रह्लाद का शासन

राजसिंहासन पर बैठते ही दैत्यर्षि प्रह्लाद ने जिस संयम और नियम के साथ शासनसूत्र को चलाया, वह परम भागवत प्रह्लाद के अनुरूप ही था । दैत्यर्षि के सिंहासनासीन होते ही सारे भूमण्डल में सुखद साम्राज्य के प्रभाव से फिर एक बार सत्ययुग ने अपना सत्ययुगी रूप धारण कर लिया । परलोकवासी हिरण्यकशिपु के आतंकपूर्ण शासनकाल में सारी प्रजा में विशेषकर शांतिप्रिय वैष्णव जनता में जितना ही अधिक भय, कष्ट, अशांति एवं विपत्तियाँ छायी हुई थीं, उतना ही अधिक अभय, सुख, शांति और सम्पत्ति दैत्यर्षि प्रह्लाद के राजत्वकाल में चारों ओर दिखलायी देने लगीं ।

सुशासन की सुविधा के लिए जितने नये नियमों के निर्माण की आवश्यकता होती, उतने ही नियम दैत्यर्षि प्रह्लाद अपने राजपंडितों और तपोधन महर्षियों से सम्मति ले तथा सत् प्रजाजन की रुचि के अनुरूप निर्माण कराते थे । अतएव उनकी प्रजा में, राजसभा में और धर्मप्राण तपोधन महर्षियों में उनके शासन से पूर्ण शांति व संतोष फैल गया ।

राज्य में जिन प्राणियों के कारण शांतिप्रिय प्रजाजनों को कष्ट था, दीन-दुःखियों को त्रास था और निर्दोष धनियों के धन की लूट थी - जिन प्राणियों के अत्याचार से प्रजा के जान-माल की या तो हानि हो रही थी या हानि होने की सम्भावना थी, उन सब अत्याचारियों को, वे चाहे राजकर्मचारी थे, राजसंबंधी थे या प्रजाजन में से थे, अधिकारच्युत कर दैत्यर्षि ने ऐसे आदर्श दंड दिये कि जिससे वे तो सदा के लिए शांत हो ही गये, साथ ही दूसरों को भी वैसे कर्म करने की वासना नहीं रही ।

दैत्यर्षि प्रह्लाद के शासनकाल में चारों वर्ण और चारों आश्रम के धर्मों का ऐसा सुंदर पालन होने लगा कि बहुत ही थोड़े काल में उनके पिता के समय की धर्म एवं धन हीन प्रजा धर्मप्राण एवं सर्वतोभाव से समृद्धिशालिनी बन गयी । जैसे पिता अपने पुत्र की भलाई के लिए सोते-जागते, रात-दिन चिंतित रहता है और उसके लिए नित्य नये-नये उपाय किया करता है, ठीक उसी प्रकार दैत्यर्षि प्रह्लाद भी पुत्र-समान अपनी प्रजा की भलाई में लगे रहने लगे ।

सारे साम्राज्य में मातृहीन प्रजा अपनी माता के अभाव को और पितृहीन प्रजा अपने पिता के अभाव को भूल-सी गयी । दैत्यर्षि प्रह्लाद ने अपनी सभी श्रेणी की प्रजा, जनता और अन्य प्राणियों के भी पालन, पोषण, शिक्षण व संवर्धन के लिए ऐसा सुंदर प्रबंध कर दिया कि किसीको किसी प्रकार की पीड़ा एवं असुविधा नहीं रही । सब लोग अत्यंत प्रसन्न होकर दैत्यर्षि की जय-जयकार करने लगे ।

यद्यपि उनके साम्राज्य में कोई शासन-संबंधी त्रुटि नहीं थी, तथापि अपने शासन-संबंधी गुप्त समाचारों को पाने के लिए उनकी ओर से अनेक गुप्त दूत केवल इसी काम के लिए रखे गये थे कि वे देखते रहें कि शासन में कहाँ पर क्या त्रुटि है ? प्रजा में शासन की ओर से असंतोष तो नहीं है ? इतना ही नहीं, उन गुप्त दूतों को यह भी आदेश था कि वे देखते रहें कि राजा के कार्यों की कहीं पर अनुचित आलोचना तो नहीं हो रही है ?

दैत्यर्षि प्रह्लाद के शासन में देश के कला-कौशल, कृषि-व्यापार आदि लौकिक विषयों की जितनी ही उन्नति हुई उतनी ही उन्नति वेद-वेदांग, स्मृति-पुराण आदि पारमार्थिक आवश्यक शिक्षाओं की भी हुई । उनके पिता के समय साम्राज्य में जितने ही विष्णु-मंदिरों और वैष्णवों के पवित्र स्थानों को तहस-नहस किया गया था, उतने ही अधिक प्रह्लाद के राजत्वकाल में नये-नये विष्णु मंदिरों और वैष्णवों के पवित्र स्थानों का निर्माण तथा पुराने नष्ट-भ्रष्ट मंदिरों, आश्रमों एवं धर्म-स्थानों का जीर्णोद्धार हुआ । (क्रमशः)

दृश्य से द्रष्टा की ओर

• बापूजी के सत्संग-प्रवचन से

वसिष्ठ भगवान कहते हैं : ''हे रामजी ! **ज्ञानसंवित् की ओर वृत्ति रखना, जगत की ओर न रखना तथा जाग्रत की ओर न जाना, जाग्रत को जाननेवाले की ओर जाना । स्वप्न और सुषुप्ति की ओर न जाना । भीतर को जाननेवाली जो साक्षी सत्ता है उसकी ओर वृत्ति रखना ही चित्त को स्थित करने का परम उपाय है ।''**

आँखों से जो यह जगत दिख रहा है, कान से जो सुनायी पड़ता है, नाक से, जीभ से जो इसका स्वाद आता है उनकी तरफ मत जाना । जाग्रत की तरफ मत जाना, जो जाग्रत को जानता है उस आत्मदेव में जगना ।

वह शुद्ध संवित् है तो आत्मा-परमात्मा का सनातन अंश लेकिन प्रमाद से अंतःकरण के द्वारा बाहर गयी और उसमें शरीर में जीने की वासना बन गयी तो जीव हो गयी । जीव अपने स्वभाव को जान ले, आत्मानुभव में तृप्त हो जाय तो सारे दुःख, सारे क्लेश सदा के लिए मिट जाते हैं। उसके लिए विष भरा वातावरण भी अमृत बन जाता है।

स्वप्न में नहीं डूबे, सुषुप्ति में नहीं डूबे किंतु स्वप्न जिससे भासित होता है कि स्वप्न आया - चला गया, गहरी नींद आयी - चली गयी, जाग्रत के खट्टे-मीठे अनुभव, खट्टे-मीठे स्वाद, रंग-बिरंगे दृश्य आये - चले गये पर जो नहीं गया वह कौन है ? बोले, 'मैं हूँ' तो उसको खोजे, उसमें डूबे । इससे चित्त जल्दी परमात्म-विश्रांति पा लेता है, चित्त के दोष जल्दी-से-जल्दी मिटते हैं । जिसको ईमानदारी की भूख लगी है ईश्वरप्राप्ति की उसके लिए इसके जैसा और साधन मिलना भी बहुत कठिन है । अजपा गायत्री, गुरुमंत्र जप, प्राणायाम, ध्यान व दीर्घ प्रणव का उच्चारण करके ज्ञान-विचार में शांत हो जाय । जाग्रत जिससे दिखता है उसकी ओर आना है तो वह व्यर्थ का समय नहीं खोयेगा । वह जब भी सुनेगा-बोलेगा तो ज्ञान बढ़ाने के लिए, भक्ति बढ़ाने के लिए, वैराग्य बढ़ाने के लिए । परमात्मा की ओर आने के लिए उसका कर्म होगा । समझ लो, उसका आखिरी जन्म है । परंतु जो भगवान की बात करते-करते राग-द्वेष की बात करते हैं, भगवान की बात सोचते-सोचते मन में किसीकी टाँग खींचने की बात आ जाती है तो वे अभी भगवान का माहात्म्य इतना नहीं जानते, अपने जीवन की कीमत इतनी नहीं जानते । जो अपने मनुष्य-जीवन की कीमत जानते हैं वे न राग से प्रेरित होकर फँसते हैं, न द्वेष से तपकर किसीकी टाँग खींचते हैं, वे तो बस भगवान की प्राप्ति के निमित्त लेते-देते हैं, मिलते हैं । जो कुछ हो उससे ज्ञान बढ़े, भक्ति बढ़े, वैराग्य बढ़े, बस । ज्ञान, भक्ति और वैराग्य बढ़ाने के लिए वे लोग यत्न करते हैं । ज्ञान, भक्ति, वैराग्य बढ़ गया तो फिर जगत में होते हुए भी मन जगत में नहीं जायेगा ।

भगवत्सुख में एक बार मन लग गया, फिर संसार का तो क्या इन्द्र का सुख भी कोई मायना नहीं रखता । निष्काम कर्म करते-करते भगवान में विश्रांति होती है । बोलते-चलते समय भी भगवद्भाव में रहते हैं तो आनंद रहता है । ध्यानयोग में आओ तो आँखें बंद होती हैं, कर्मयोग में आओ तो हँसते-खेलते खुली आँख मौज-ही-मौज । भक्तियोग में आओ तो भाव के द्वारा भगवान में विश्रांति मिलती है । भगवद्भक्ति, भगवद्ज्ञान, भगवद्ध्यान के सिवाय इधर-उधर की बात नहीं । हमको लालजी महाराज के प्रति स्नेह क्यों था ? क्योंकि उनका

एक स्वभाव बहुत बढ़िया था, कोई जरा भी इधर-उधर की बात करता तो कहते : 'अरे ! यह क्या बात करते हो ? भक्ति बढ़े ऐसी बात करो, ज्ञान बढ़े ऐसी बात करो, वैराग्य बढ़े ऐसी बात करो ।' खुद भी ज्यादा बात नहीं करते थे, मौन ले लेते थे । दिन भर मौन रहते, शाम को थोड़ा खोलते, सत्संग की कोई किताब सुनते ।

पापी और पुण्यात्मा की पहचान क्या ? कि आत्मशक्ति का, अंतर की प्रेरणा का नश्वर शरीर के लिए, उसके ऐश के लिए खर्च करना यह पापी मनुष्य की पहचान है और शाश्वत आत्मा के लिए शरीर का उपयोग करना यह पुण्यात्मा आदमी की पहचान है । पापी और पुण्यात्मा का ऐसा वर्णन आता है । भाई ! शरीर है तो चलो ज्ञान-ध्यान होगा, इसलिए जरा खिला दिया । ऐसा नहीं कि ऐश-आराम चाहिए, सुविधा चाहिए । सुविधा लेने में जो पड़ता है वह आत्मा का उपयोग करके शरीर को महत्त्व देता है और जो भगवान की तरफ चलता है वह शरीर का उपयोग करके भगवद्भाव, भगवद्ज्ञान को महत्त्व देता है ।

लालजी महाराज को हम इस बात पर और भी स्नेह करते हैं कि अट्ठासी साल की उम्र में भी वे अपना काम लगभग अपने हाथ से कर लेते थे । आँखों में थोड़ी तकलीफ थी इसलिए थोड़ा-बहुत सेवक से काम लेते थे, बाकी तो खुद दूध गरम कर लेते थे, खुद भोजन बना लेते थे अट्ठासी साल की उम्र में । वे बोलते : ''पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, ग्यारहवाँ मन... ये ग्यारह-ग्यारह सेवक रहते हैं मेरे पास, फिर और सेवक की क्या जरूरत है ? यही तो सेवक हैं ।''

अपने लिए ज्यादा सुविधा ढूँढ़ोगे तो संसार की तरफ जाओगे । मन के अनुसार चल के तो जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति की ओर भटक रही है मनुष्य-जाति । उन सबको देखनेवाले परमात्मा की तरफ कौन आता है ? जन्मो और मरो... इकट्ठा कर के छोड़ के मरो, थोड़ा छोड़ के मरो या ज्यादा छोड़ के मरो, मोटा शरीर कर के मरो या पतला कर के मरो, मरो और जन्मो । तो क्या फायदा हुआ मनुष्य-जन्म का ? सफल माने फल लगा तो सफल. ऐसे ही हृदय में

सफल, नहीं तो विफल हो गया, विफल से भी भद्दा हो गया । समझो, काम करने गये, नहीं हुआ तो ऐसे-के-ऐसे ही वापस आये । अरे ! फेरा विफल गया । यहाँ तो मनुष्य-जन्म ले के आये और ईश्वरप्राप्ति का काम नहीं हुआ तथा गलत कामों में लगे तो फिर नरकों में जायेंगे, और नीचे गिर गये ।

यह पिकनिक स्थान कितना बढ़िया है... यह बच्चा कितना अच्छा लगता है... अरे ! बच्चे का हाड़-मांस अच्छा लगता है ? उसके भीतरवाले की स्मृति कर न मूर्ख ! नहीं तो वही बच्चा दुःख देगा, वही पत्नी दुःख देगी, वही पति दुःख देगा, वही मित्र दुःख देगा । जो आत्मा से अलग मित्र को देखता है वह मित्र से दुःख पायेगा । जो आत्मा से अलग पति को, पत्नी को, स्नेहियों को देखता है वह उनसे दुःख पायेगा । अपने आत्मा में प्रीति नहीं है और दूसरी जगह प्रीति करेगा तो ठोकर खायेगा, दुःख पायेगा, सताया जायेगा, मारा जायेगा, जन्माया जायेगा, मारा जायेगा, जन्माया जायेगा...

इसलिए वसिष्ठजी महाराज के वचन शिरोधार्य कर लें आप और हम कि ''हे रामजी ! जाग्रत की ओर नहीं जाना, जाग्रत जिससे दिखता है उस आत्मदेव की तरफ आना । स्वप्न और सुषुप्ति की तरफ भी मत जाना, उनकी साक्षी जो सत्ता है उस आत्मा-परमात्मा की तरफ जाना, तुरीयावस्था की तरफ जाना ।''

शंभु मुनि ने इक्ष्वाकु राजा से कहा : ''हे राजन् ! तू शुद्ध और राग-द्वेष से रहित, आत्माराम, नित्य अंतर्मुख रह । जब तू आत्माराम होगा तब तेरी व्याकुलता नष्ट हो जायेगी और तू शीतल चंद्रमा-सा पूर्ण हो जायेगा । ऐसा होकर अपने प्राकृत आचार में विचर और किसी फल की इच्छा न कर । जो पुरुष इच्छा से रहित होकर कर्म करता है वह सदा अकर्ता है और महा शोभा पाता है । ऐसी अवस्था में स्थित होकर जो भोजन आये उसको खा ले, जो अनिच्छित वस्त्र आये उसको पहन ले, जहाँ नींद आये, वहाँ सो जा । राग-द्वेष से रहित हो आत्मा की भावना कर. जिससे तेरे दुःख नष्ट हो जायें ।''

मार्ग अनेक, लक्ष्य एक
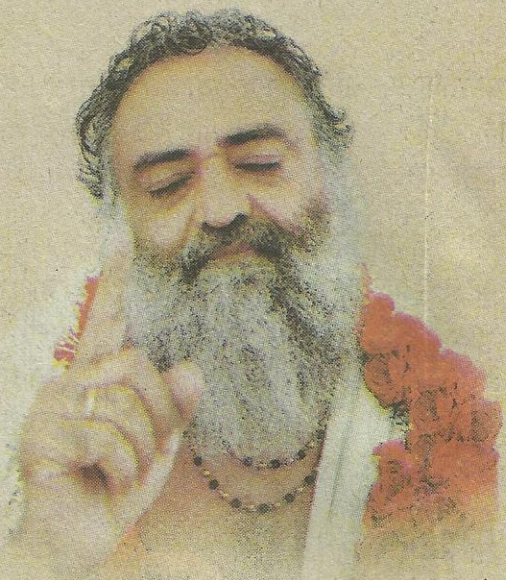
● बापूजी के सत्संग-प्रवचन से

कुछ लोग कहते हैं : 'कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत हो जाय तो योग्यताएँ और सिद्धियाँ मिलती हैं तथा परमात्मा का साक्षात्कार होता है ।' कुछ कहते हैं : 'कुण्डलिनी जाग्रत हो... योग्यताएँ विकसित हों... फलाना हो... इसमें कब तक पड़े रहोगे । योग्यताएँ विकसित हो गयीं तो क्या हो गया ? सीधे मन को एकाग्र करो तो प्राण अपने-आप रुकेंगे ।' कुछ लोग बोलते हैं : 'प्राणों का संयम करो तो मन रुकेगा ।' लेकिन वसिष्ठजी महाराज बड़ी व्यापक बात करते हैं : 'किसीको प्राणों को रोकना आसान लगता है, उसके लिए प्राण उपासना अच्छी है । किसीको मन को रोकना सरल लगता है, उसके लिए मन की एकाग्रतावाली साधना आसान है ।'

भगवान श्रीकृष्ण भी वही बात करते हैं :

यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते ।
एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति ॥

'ज्ञानयोगियों द्वारा जो परम धाम प्राप्त किया जाता है, कर्मयोगियों द्वारा भी वही प्राप्त किया जाता है इसलिए जो पुरुष ज्ञानयोग और कर्मयोग को फलरूप में एक देखता है, वही यथार्थ देखता है ।' **(श्रीमद्भगवद्गीता : ५.५)**

सांख्ययोग में तीव्र विवेक-वैराग्य के द्वारा जिस आत्मपद की प्राप्ति होती है, वही आत्मपद की ऊँचाई योग के द्वारा भी प्राप्त होती है । ऐसा जो जानता है वह ठीक जानता है । योगवाले बोलते हैं : 'यही रास्ता सही है ।' तो तत्त्वज्ञानवाले बोलते हैं : 'नहीं, यही रास्ता सही है ।' भक्तिवाले बोलते हैं : 'नहीं, भक्ति का मार्ग ही सही है ।' सब अपनी जगह पर अपनी विशेषता लिये हुए हैं । आवश्यकता यह है कि आप उनसे फायदा उठाने की अपनी योग्यता कितनी बढ़ा रहे हैं ।

आप भक्ति के रास्ते हैं तो आपमें भाव की दृढ़ता चाहिए, कर्मयोग के रास्ते हैं तो आपमें निष्कामता की दृढ़ता चाहिए और ज्ञान के रास्ते जाते हैं तो आपके अंदर वैराग्य की दृढ़ता चाहिए । ज्ञानमार्ग में वैराग्य प्रखर हो तो ज्ञान शीघ्र होता है । भक्ति में दृढ़ श्रद्धा और भाव हो तो सफलता आती है । कर्म में क्रिया एवं निष्कामता की प्रधानता है ।

जो शिखर पर पहुँच गये हैं उनको तलहटी से आते हुए लोग दिखते हैं तो वे बोलते हैं : 'तुम इस रास्ते से आ रहे हो, ठीक है, आओ-आओ ।' दूसरे को बोलते हैं : 'तुम उधर मत जाना, इसी रास्ते से चले आओ ।' तीसरे को बोलते हैं : 'तुम जिधर से आ रहे हो, ठीक है ।' परंतु जिन्होंने चलना शुरू ही किया है वे आपस में लड़ रहे हैं कि 'मैं जिस राह से जा रहा हूँ वहाँ से शिखर दिख रहा है । यही रास्ता सही है, वह भटक जायेगा ।' दूसरा बोलता है : 'यह भटक जायेगा ।' तो संघर्ष, झगड़ा या एक-दूसरे को नीचा दिखाना - यह छोटी अवस्था में हो जाता है, ऊँची अवस्था में नहीं होता ।

कच्चा वेदांती भक्ति को काटेगा और कच्चा भक्त वेदांत को काटेगा किंतु पक्का भक्त वेदांत की महिमा को जानता है । भक्तिशास्त्र किसने बनाया ? अज्ञानी ने बनाया कि ज्ञानी ने बनाया ? सच्चा भक्त जानता है कि

भक्तिशास्त्र ज्ञानियों ने बनाया है । सच्चा वेदांती जानता है कि भक्ति भी वेदांत का ही अंग है । द्वेष की जगह कहाँ है ? दोनों एक-दूसरे के पोषक हैं भैया ! वेद में कर्म की महिमा है, ज्ञान की महिमा है, उपासना की महिमा है ।

कर्म, उपासना... उपासना में भक्ति, योग आदि आ गये - ये सब-के-सब भैया ! हमारे अंतःकरण को शुद्ध करने का काम करते हैं । ये पोषक हैं पर बेजवाबदार वेदांती बोलेगा, 'राम-राम' करने से क्या होता है ? और बेजवाबदार भक्त कहेगा, 'वेदांती तो शुष्क होते हैं ।' उन बेचारे भक्तों को पता नहीं कि वेदांत जैसा रस और कहीं हो ही नहीं सकता है और कच्चे वेदांती को पता नहीं कि भक्त के हृदय की भावना की अमृतधारा क्या होती है ! तो बेजवाबदार भक्त वेदांती को देखकर अपना दिल जलाये और कच्चा वेदांती भक्त को देखकर अपना दिल जलाये, यह बात अलग है किंतु जो पक्का वेदांती है अथवा जिनको भक्ति के माध्यम से, योग के माध्यम से या गुरु की कृपा के माध्यम से स्व-स्वरूप का, रामरस का ठीक से भान हो गया है, उनके दिल के द्वार बहुत विशाल होते हैं ।

एक अच्छे संत हो गये । उन्होंने गाया है : 'मैंने दिल के द्वार खोल दिये । फिर कौन आयेगा, कैसा आयेगा - यह विचार मैं नहीं करता हूँ । मेरी निगाह में तो वह राम का ही स्वरूप है, मेरा अपना आपा है । वह चाहे मुझे कुछ भी मान ले परंतु मैं तो उसे अपना स्वरूप ही मानता हूँ ।' सच्चे भक्त, सच्चे वेदांती, सच्चे कर्मयोगी की ऐसी निगाह होती है ।

स्वामी रामतीर्थ को कवि नजीर की रचना प्रिय थी । वे कहते थे :

कलजुग नहीं करजुग है यह, याँ दिन को दे अरु रात ले ।
क्या खूब सौदा नकद है, इस हाथ दे उस हाथ ले ॥
यहाँ जहर दे तो जहर ले, शक्कर में शक्कर देख ले ।
नेको को नेकी का मजा, मूजी[1] को टक्कर देख ले ॥
मोती दिये मोती मिले, पत्थर में पत्थर देख ले ।
गर तुझको यह बावर[2] नहीं, तो तू भी करके देख ले ।
दुनियाँ न जान इसको मियाँ, दरिया की यह मँझधार है ।
औरों का बेड़ा पार कर, तेरा भी बेड़ा पार है ॥

इसीको वेदांत ने कहा : 'निष्काम कर्मयोग' और भक्ति ने कहा : 'सबमें भगवान है - सबकी सेवा करो ।' बात तो एक ही है ।

१. सतानेवाला, दुःख देनेवाला २. निश्चय, यकीन

काव्य गुंजन

गुरु पारस संकल्प

अन्तर का तम नाश कर, देते दिव्य प्रकाश।
गुरु के कृपा-कटाक्ष से, कट जाते भव-पाश॥
देहरूप हैं वे नहीं, वे हैं आत्मस्वरूप ।
जन्मभूमि सौभाग्य की, पावन परम अनूप॥
शुचिता के शृंगार वे, जीवन के उल्लास।
आदर्शों के कुंज में, मृदुता के एहसास॥
पर्वत से ऊँचे बड़े, सागर से गम्भीर।
ताप-शाप मिटाने हेतु, शीतल मंद समीर॥
लौह-सदृश हम जीव हैं, गुरु पारस-संकल्प।
सदुपदेश-संस्पर्श से, करते काया-कल्प॥
जीवन का जो सत्य है, उसका कर संधान।
जाड्य-तुषार विनाशते, हर लेते अज्ञान॥
रहकर भी संसार में, रहते सदा निर्लेप।
जैसे जल में कमल रहे, बिल्कुल ही अलेप॥
जो अपकारी लोग हैं, वंचकता की खान।
उनका भी हित चाहते, होवे जग-कल्याण॥
परहितचिंतन में निरत, जो हैं ज्ञानसमृद्ध।
कालजयी व्यक्तित्व वे, सतत साधनासिद्ध॥
पूर्णकाम निष्काम वे, करुणा के आगार।
उनकी वाणी में निहित, धर्म-कर्म का सार॥
दुराराध्य हैं वे नहीं, वे हैं नहीं असाध्य।
हैं सजीव तपरूप वे, जन-जन के आराध्य॥

- डॉ. गणेशदत्त सारस्वत
सीतापुर (उ.प्र.)।

भगवान ने कलियुग बनाया ही क्यों ?

● बापूजी के सत्संग-प्रवचन से

कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि 'भगवान ने यह कलियुग बनाया ही क्यों ?' सतयुग में आदमी का मन सहज ही भगवान की तरफ चलता था । घरों को ताले लगाने की जरूरत नहीं थी, कोर्ट-कचहरी की जरूरत नहीं पड़ती थी । आदमी बेईमान ही नहीं थे तो कोर्ट-कचहरी क्या करें ? क्यों करें ? सबके अंदर त्याग, वैराग्य था । एक कमाता था, सौ खाते थे, बड़े मजे से जीते थे । फिर त्रेता आया, थोड़ा-सा मन इधर-उधर हुआ । मनुष्य थोड़े संग्रही, थोड़े भोगी हुए । द्वापर आया तो यह सब और ज्यादा हो गया । कलियुग में तो तौबा ! तौबा ! हाय राम ! जिनके पास है उन्होंने 'और चाहिए और चाहिए...' में नींद खपा दी, शांति खपा दी लेकिन संग्रह की वासना नहीं खपी (पूरी हुई) और जिनके पास नहीं है वे पाने की कामना में खपे जा रहे हैं ।

अभी दुनिया की जो वैभव-सम्पदा है उसका ८०% केवल २०% लोगों के पास है और बाकी के ६०% लोगों के पास दुनिया की १९% सम्पदा है । ८० और १९, कुल ९९% सम्पदा हो गयी । बाकी के जो २०% लोग हैं उनके पास केवल १% है । एक जगह ८०%, दूसरी जगह १% एक को मिलता है । मानों किसी स्थान में १०० व्यक्ति भोजन करने गये, १०० थालियाँ हैं । उनमें से बलवान २० व्यक्तियों ने ८० थालियाँ हड़प लीं । मध्यम शक्तिवाले ६० व्यक्तियों को १९ थालियाँ मिलीं और दुर्बल २० व्यक्तियों को १ थाली ही मिली ।

जिन्होंने ८०% संग्रह करके रखा है वे अगर १% भी संग्रहखोरी छोड़ दें तो जो बेचारे ६-६ आदमी एक कमरे में सड़ रहे हैं, उनको दो कमरे मिल जायेंगे । जिन बेचारों को साइकिल है उनको छोटा-मोटा मोपेड आ जायेगा, जो १५०० रुपये की नौकरी करते हैं उनको ३००० रुपये मिल जायेंगे और ३००० रुपयेवाले को ६००० परंतु संग्रहवाला संग्रह के बोझ से मर रहा है और अभाववाला अभाव के ताप से तप रहा है । संग्रहवाले चिंता, विलासिता की खाई में गिर रहे हैं और जिनके पास नहीं है वे बेचारे अभाव में शोषित हो रहे हैं । तो ऐसा कलियुग भगवान ने बनाया क्यों ? चलो, बनाया तो बनाया लेकिन कम-से-कम ऐसा करते, जो अति संग्रह करते हैं उनको पागल बना देते या जो किसी पर बुरी नजर करता है उसको अंधा बना देते तो कोई बुरी नजर नहीं करेगा, कोई चोरी करता है तो उसी समय उसके हाथ गल जायें या लकवा मार जाय- भगवान ने ऐसा क्यों नहीं किया ? ऐसा भी सवाल करनेवाले कर लेते हैं, सोचनेवाले सोच लेते हैं ।

मैं पूछता हूँ कि आपका बेटा अगर चोरी करे तो आप उसके हाथ काटना चाहेंगे ? बोले : नहीं ! बच्चा है, देर-सवेर सुधरेगा ।

आपका बेटा अति संग्रह करता है और आप त्यागी हैं तो क्या उसको पागल करना चाहेंगे ? बोले : नहीं !

आपका बेटा बुरी नजर से देखता है तो उसकी आँख निकालना चाहेंगे आप ? बोले : नहीं !

आपका बेटा तो पाँच-पचीस साल से है परंतु आप तो ईश्वर के सनातन बेटे हो । जब पाँच-पचीस साल के पिता-पुत्र के संबंध के कारण पिता इतना उदार हो सकता है तो ईश्वर से तो सनातन संबंध है, वह भी उदारता रखता है कि अभी नहीं तो बाद में सुधरेगा । इस बार नहीं, इस जन्म में नहीं, इस चोले में नहीं तो दूसरे में सुधरेगा । देर-सवेर सुधर जायेगा । फिर यह सवाल आ के खड़ा होता है कि भगवान ने कलियुग बनाया ही क्यों कि ऐसी बुद्धि हो जाय ?

'श्रीमद्भागवत' में एक बात आती है - भक्ति कहती है नारदजी को कि 'नारदजी ! भगवान ने ऐसे कलयुग को स्थान क्यों दिया ? मुझे समझ में नहीं आता है ।' भक्ति भगवान की फरियाद नहीं करती है, लोगों के प्रश्न को दुहराती है ।

बेटा ठिठुर रहा है, माँ ने चादर ओढ़ा दी । बाप आया घर में, दूसरी चादर डाल दी । बाप भोजन कर रहा है । माँ

ने देखा कि अभी भी ठिठुर रहा है, तीसरी चादर डाल दी। भोजन के बाद घूमने जाते समय बाप ने फिर से बेटे का मुखड़ा देखा। पाया कि बेटा अभी भी ठिठुर रहा है। बाप ने तीनों चादरें उठाकर फेंक दीं। माँ ने कहा : 'यह ठिठुर रहा है, आपने तीनों चादरें क्यों फेंक दीं ?' बोले : 'चादर ओढ़ायी कि इसको ठंड न लगे किंतु इसके गहरे मन में ठंड घुस गयी है। अब यह पौष महीने की ठंडी नहीं पचायेगा तो ज्येष्ठ की गर्मी कैसे पचायेगा ? और सर्दी-गर्मी नहीं पचायेगा तो बरसात को कैसे हजम करेगा ? यह तो बीमार हो जायेगा, कमजोर हो जायेगा, इसलिए इसको ठिठुरने दो जरा।'

ऐसे ही भगवान ने कलियुग बनाया ताकि लोग ठिठुर के मजबूत हो जायें तो मुक्ति को भी पचा सकें और जीवन को भी पचा सकें। जीवन जीने की कला सीख सकें ठिठुरते हुए।

पहले 'मोक्ष कुटीर' की चारदीवारी थी। उस चारदीवारी की दीवाल पर नारायण को मैं खड़ा कर देता और खुद नीचे खड़ा रहता। मैं बोलता : 'आओ।' पहले हिचकिचाता था, बाद में कूदने लग गया। कूदते-कूदते उसका मनोबल विकसित हुआ। फिर बचपन में जंगल में या इधर-उधर कहीं भी अकेला जाता तो डरता नहीं था। कभी-कभी बच्चा गिर पड़ता है तब माँ उसको उठाने नहीं भागती ताकि वह अपने-आप उठे, अपने बल से उठे। ऐसे ही कलियुग, गिरानेवाला युग भगवान ने इसलिए बनाया कि बच्चा गिरे और फिर सत्संग, साधना करके अपने-आप उठे क्योंकि मेरा सपूत है ! इसलिए भगवान जो करते हैं अच्छे के लिए करते हैं। कुम्हार बाहर से घड़े को चोट मारता है पर भीतर हाथ भी रखता है। ऐसे ही परमात्मा विघ्न-बाधाओं, मुसीबतों की चोट तो मारता है किंतु सत्संग, साधन-भजन, प्रार्थना करने पर कई बार असहाय घड़ियों में सहायता भी मजे की पहुँचाता है - यह भी तो उसकी करुणा है !

संत एकनाथ महाराज की वाणी

हरि म्हणा बोलतां हरि म्हणा चालतां। हरि म्हणा खेळतां बाळपणीं ॥
म्हणा हरिनाम पुसती सकळ काम। हरिनामें ब्रह्म हातां चढे ॥
हरि म्हणा उठतां हरि म्हणा बैसतां। हरि म्हणा पाहतां लोकलीला ॥
हरि म्हणा आसनीं हरि म्हणा शयनीं। हरि म्हणा भोजनीं ग्रासोग्रासीं ॥
हरि म्हणा एकटीं हरि म्हणा संकटीं। हरि धरा पोटीं भाव बळें ॥
हरि म्हणा एकांती हरि म्हणां लोकांतीं। हरि म्हणा अंतीं देहत्यागीं ॥
हरि म्हणा स्वार्थी हरि म्हणा परमार्थी। हरि म्हणा ब्रह्मप्राप्तीलागीं ॥
हरि म्हणा निजनिधी हरि म्हणा आनंदी। हरि परमानंदी आनंद तो ॥
हरि म्हणा जनीं हरि म्हणा विजनीं। एका जनार्दनीं हरि नांदें ॥

अर्थ : बोलते-चलते हरि का नाम लो। बाल्यावस्था में खेलते हुए भी हरि का नाम लो। हरिनाम लेने से सभी इच्छा-वासनाएँ नष्ट होंगी तथा ब्रह्म को हस्तामलकवत् (हथेली पर रखे आँवले की भाँति) जान लोगे। उठते हुए हरिनाम लो, बैठते हुए हरिनाम लो। जगत का व्यवहार देखते हुए भी हरिनाम लो। आसन पर बैठे हों तब या सोते समय हरिनाम लो। भोजन करते समय प्रत्येक ग्रास के साथ हरिनाम लो। अकेले होने पर या किसी विपत्ति में फँस जाने पर भी हरिनाम लो तथा दृढ़ भाव के बल से हरि को अपने हृदय-मंदिर में धारण करो। एकांतवास में हो या लोक-संपर्क में, आप सदैव हरिनाम लो। जीवन के अंतिम समय में, देहत्याग करते वक्त भी श्रीहरि का नाम लो। स्वार्थ से बोलो, चाहे परमार्थ के लिए बोलो लेकिन बोलो तो वही एक श्रीहरि का पावन नाम ! ब्रह्मप्राप्ति की लगन लगी हो तो भी हरिनाम लो। पूरे अंतःकरण से, आनंद से हरिनाम लो क्योंकि इससे प्राप्त आनंद श्रीहरि के परमानंद पद में स्थिति करानेवाला है। लोगों के साथ हों या विराने में हों, आप हरि बोलो क्योंकि श्रीहरि सर्वत्र व्याप्त हैं।

ॐ विचार मंथन

समयरूपी घोड़ा भागा जा रहा है...

'अथर्ववेद' का एक मंत्र है :

कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिः सहस्राक्षो अजरो भूरिरेताः ।
तमा रोहन्ति कवयो विपश्चितस्तस्य चक्रा भुवनानि विश्वा ॥

'कालरूपी घोड़ा विश्वरूपी रथ का वाहक है और वह रथ सात किरणों, सहस्र नेत्रों तथा अत्यधिक पराक्रम से युक्त एवं जरा से रहित है, समस्त लोक उसके चक्र हैं । बुद्धिमान लोग ही उस रथ पर आरोहण करते हैं ।' **(अथर्ववेद : कांड १९, सूक्त ५३, मंत्र १)**

जैसे घुड़सवार घोड़े को नियंत्रित कर लेता है, वैसे ही बुद्धिमान लोग अपने समय को सुनियोजित करके उसे सत्प्रयोजनों में लगा लेते हैं ।

समय ऐसा अमूल्य धन है जिस धन की किसीके साथ तुलना नहीं की जा सकती । गया हुआ धन, खोया हुआ स्वास्थ्य, गँवाया हुआ राजपाट, हारी हुई कुर्सी, खोयी हुई इज्जत भी लोग फिर से अर्जित कर लेते हैं किंतु बीते हुए समय को आज तक कोई माई का लाल वापस नहीं ला पाया । एक चित्रकार ने विचित्र चित्र बनाया । उसमें चित्रित पुरुष का मुँह बालों से ढँका हुआ था । सामान्यतः मनुष्य के सिर पर बाल रहते हैं और सामने ललाट खुला रहता है किंतु उस पुरुष को आगे बाल थे, पीछे टाल थी एवं पैरों में पंख लगे हुए थे । लोगों ने पूछा : ''ऐसा चित्र किस निमित्त से बनाया है ? यह किसकी खबर दे रहा है ?''

चित्रकार बोला : ''यह समय का चित्र है । समय आता है मुँह ढँककर, पता नहीं चलता कि कौन-सा समय है ? बीतता है ऐसे जैसे गंजे के सिर के बाल झड़कर टाल रह जाती है और जाता है तो मानों, पैरों में पंख लगाकर उड़ जाता है ।''

मित्र हमारा समय खा जाते हैं, सुख हमारा समय खा जाते हैं । वे हमें बेहोशी में रखते हैं । जो करना है वह रह जाता है और जो नहीं करना है उसे सँभालने में ही जीवन खो जाता है ।

बचपन आया और बचपन के खेल पूरे हुए-न-हुए कि जवानी आ जाती है । जवानी का जोश दिखा-न-दिखा, बुढ़ापा आकर जीवन पर हस्ताक्षर कर देता है और बुढ़ापा कब मृत्यु में बदल जाय, कोई पता नहीं ।

समय देकर आज तक आपने जो कुछ भी पाया है, उन सबको लौटाकर भी आप बीता हुआ समय वापस नहीं ला सकते । मि. कूलिज चार साल तक अमेरिका के राष्ट्रपति रहे । उनके मित्रों ने उनसे कहा : ''आप फिर से चुनाव लड़ो । समाज में आपका बड़ा प्रभाव है । आप फिर चुने जाओगे ।''

कूलिज ने कहा : ''चार साल मैंने 'व्हाइट हाउस' में रहकर देख लिया । राष्ट्रपति पद सँभालकर देख लिया । कोई सार नहीं । खुद को धोखा देना है, समय बर्बाद करना है । अब मेरे पास बर्बाद करने के लिए समय नहीं है ।''

स्वामी रामतीर्थ प्रार्थना किया करते थे : ''हे प्रभु ! मुझे मित्रों से बचाओ, मुझे सुखों से बचाओ ।''

सरदार पूरन सिंह ने कहा : ''आप यह क्या कह रहे हैं स्वामीजी ? शत्रुओं से बचना होगा, मित्रों से क्या बचना ?''

रामतीर्थ : ''नहीं, शत्रुओं से मैं निपट

लूँगा, दुःखों से मैं निपट लूँगा; दुःख में कभी आसक्ति नहीं होती, ममता नहीं होती । ममता, आसक्ति जब हुई है तब सुख से हुई है, मित्रों से हुई है, स्नेहियों से हुई है ।''

मित्र हमारा समय खा जाते हैं, सुख हमारा समय खा जाते हैं । वे हमें बेहोशी में रखते हैं । जो करना है वह रह जाता है और जो नहीं करना है उसे सँभालने में ही जीवन पूरा हो जाता है । समय का बहुत महत्त्व है । समय के मूल्य को जानो ।

श्रीमद् आद्य शंकराचार्यजी का कथन है :'एक करोड़ सोने की मोहरें देकर भी आयुष्य का एक पल भी बढ़ा नहीं सकते ।' अतः दिनचर्या इस तरह बनानी चाहिए कि एक क्षण भी व्यर्थ न जाय । एक भारतीय सज्जन ने जापान में देखा कि स्टेशन पर ट्रेन रुकने के बाद ड्राइवर नोटबुक में कुछ लिख रहा है । पूछने पर ड्राइवर ने बताया : ''मैं स्टेशन पर पहुँचने का समय लिख रहा हूँ । गाड़ी पहुँचाने में अगर एक मिनट भी देर करूँगा तो इसमें सफर करनेवाले ३००० यात्रियों के उतने ही मिनट बर्बाद होंगे और इस प्रकार मुझसे देशद्रोह का अपराध हो जायेगा ।''

सभी कर्मचारी अगर इस प्रकार सावधान रहकर समाजरूपी देवता का समय बचायें तो कितना अच्छा होगा !

जीवन में समय का सदुपयोग परमावश्यक है । इसके लिए आपको समय का पाबंद होना पड़ेगा । समय का सदुपयोग करके आप दुनिया की हर चीज प्राप्त कर सकते हैं परंतु दुनिया की सारी धन-दौलत लुटाकर भी गुजरे हुए समय को हासिल नहीं कर सकते । समय को धन की नाईं तिजोरी में नहीं रखा जा सकता । अतः सावधान ! समयरूपी अमूल्य धन नष्ट न कीजिये ।

नेपोलियन समय का ध्यान इस तरह रखता था, जैसे युद्ध के नक्शे का ! सेना की तो बात ही क्या, इस विषय में वह अपने सेनानायकों का भी बड़ा ध्यान रखता था । एक बार उसका मंत्री दस मिनट देर से आया । नेपोलियन के कारण पूछने पर उसने कहा : ''मेरी घड़ी दस मिनट लेट है ।'' तब नेपोलियन ने कहा : ''या तो तुम अपनी घड़ी बदल लो, नहीं तो मैं तुम्हें बदल दूँगा ।''

कलाई में घड़ी होते हुए भी आप अपने काम पर ठीक समय पर नहीं जा पाते हो तो आपका घड़ी बाँधना व्यर्थ ही है । टिक-टिक करती हुई घड़ी आपको यही संदेश देती है, सावधान करती है कि उद्यम और पुरुषार्थ ही जीवन है । निरंतर कार्य में लगे रहो, प्रभु-सुमिरन में लगे रहो। एक क्षण भी व्यर्थ मत जाने दो । जीवन में समय का बड़ा महत्त्व है । जो समय बर्बाद करता है, समय उसीको बर्बाद कर देता है ।

याद रखिये, अमूल्य समय का उपयोग अमूल्य से भी अमूल्य परमात्मा को पाने के लिए करना ही मनुष्य-जीवन का वास्तविक उद्देश्य है । जिन्होंने इस उद्देश्य को पाने का दृढ़ संकल्प करके समय का सदुपयोग किया है, वे ही वास्तव में महान बने हैं, उन्हींका जीवन कृतार्थ हुआ है ।

(पृष्ठ ३० का शेष)

उसका परिणाम स्वास्थ्य के लिए तथा समाज और देश के लिए भी हितकर नहीं होता । इस दृष्टि से भी साधक को हरेक काम, चाहे वह खान-पान संबंधी साधारण हो, चाहे परिवार, समाज, देश से संबंध रखनेवाला हो, ठीक-ठीक करना चाहिए ।

जिस समय साधक बिना कर्म किये रह सके अर्थात् उसे न तो कोई काम कर्तव्यरूप से प्राप्त हो और न किसी काम को करने के लिए किसी प्रकार की क्रियाशक्ति का वेग हो, उस समय कर्म करना आवश्यक नहीं है । कर्म करने की बात तो उसी समय के लिए कही जाती है, जब साधक के लिए कर्म करना आवश्यक हो जाय ।

सही प्रवृत्ति होने पर सहज निवृत्ति स्वतः प्राप्त होती है । सहज निवृत्ति ज्यों-ज्यों स्थायी और स्थिर होती जाती है, त्यों-ही-त्यों मन में स्थिरता, हृदय में प्रीति और विचार का उदय अपने-आप होता जाता है, जो कि मानव की माँग है ।

ब्रह्मचर्य क्यों ?

तात्त्विक ब्रह्मचर्य - ब्रह्म में रमण

ब्रह्मचर्य का तात्त्विक अर्थ तो है ब्रह्म में, आत्मा में, अपने परमात्मस्वरूप में चर्या करना अर्थात् चरना-रमना-रहना । ईश्वर का, अपने सत्यस्वरूप का विस्मरण यही अब्रह्मचर्य, यही विकार है । आत्मा में रमण करनेवाले महापुरुषों के हृदय, मन या शरीर में किंचित् भी विकारवृत्ति नहीं होती । इस ब्रह्मचर्य के सहज परिणामरूप स्थूल वीर्यरक्षा ठीक उसी प्रकार होती है, जिस प्रकार पूर्व दिशा में दृष्टि लगी हो तब पश्चिम दिशा की तरफ देखने की क्रिया का अपने-आप अभाव होता है ।

स्थूल ब्रह्मचर्य - वीर्यरक्षा

ब्रह्मचर्य का दूसरा प्रचलित अर्थ लें तो उसमें केवल स्थूल वीर्यरक्षा का ध्येय होता है । मानवी स्पर्श-व्यवहार से दूर रहकर शारीरिक शक्ति स्खलित न होने देनेवाले को भी ब्रह्मचारी कहा जाता है । यहाँ वीर्यरक्षा से प्राप्त प्रचंड शक्ति अपने किसी विशेष मनपसंद कार्य में उपयोगी बने यह ध्येय होता है । जैसे - कोई वैज्ञानिक अपने शोधकार्यों की सिद्धि में, नेता अपनी देशसेवा के कार्य में, विद्यार्थी अपनी पढ़ाई में तो कोई रोगी अपने शरीर को स्वस्थ व शक्तिसंपन्न बनाने के उद्देश्य से वीर्यरक्षा करे तो यहाँ ब्रह्मचर्य का उद्देश्य केवल स्थूल वीर्यरक्षा ही है ।

विषय-वासना क्या है ?

वासना की व्याख्या करते हुए 'श्री योगवासिष्ठ महारामायण' में कहा गया है :

दृढभावनयात्यक्त पूर्वापरविचारणम् ।
यदादानं पदार्थस्य वासना सा निगद्यते ॥

'आगे-पीछे का विचार-विवेक छूटकर भावना के तीव्र आवेग से पदार्थों का ग्रहण होना, इसे वासना कहते हैं ।'

'विषय' की व्याख्या करते हुए कहा गया है :

विषीदन्ति धर्म प्रति नोत्सहन्ते ऐतेष्विति विषयाः ।

'जिसमें गिरने से प्राणी धर्म का उत्साह गँवा बैठे उसका नाम विषय है ।' **(उत्तराध्ययन सूत्र, अ. : ४)**

विषस्य विषयाणां च दूरमत्यन्तमन्तरम् ।
उपभुक्तं विष हन्ति विषयाः स्मरणादपि ॥

'विष और विषय में बड़ा भारी अंतर है । विष तो खाने से मृत्यु लाता है, जबकि विषय तो स्मरणमात्र से ही नाश कर डालता है ।' **(उपदेश प्रासाद)**

विषीयन्ते निबध्यन्ते विषयिणोऽस्मिन्निति विषयः ॥

'जिसमें विषयी प्राणी बँध जाय उसका नाम विषय है ।' **(भगवती सूत्र : ८.१)**

ब्रह्मचर्य पर धर्मशास्त्रों व महापुरुषों के विचार

'व्रतों में ब्रह्मचर्य उत्कृष्ट है'- ऐसा 'अथर्ववेद' में कहा गया है : **व्रतेषु वै वै ब्रह्मचर्यम् ।**

योग के ग्रंथों में ब्रह्मचर्य का अर्थ इन्द्रिय-संयम दिया गया है ।

विद्या हि सा ब्रह्मचर्येण लभ्या ।

'ब्रह्मचर्य से ही ब्रह्मविद्या को प्राप्त करना संभव है ।' **(महाभारत, उद्योग पर्व : ४४.२)**

ब्रह्मलोकं ब्रह्मचर्येणानुविन्दति ।

'ब्रह्मचर्य से ही ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है ।' **(छान्दोग्य उपनिषद् : ८.४.३)**

'वैद्यक शास्त्र' में इसको परम बल कहा गया है :

ब्रह्मचर्यं परं बलम् । 'ब्रह्मचर्य परम बल है ।'

जैनागमों में ब्रह्मचर्य को धर्मरूपी पद्म सरोवर की सीमा/मर्यादा, सद्‌गुणोंरूपी महारथ का जुआ, व्रत-नियमरूपी धार्मिक वृक्ष का तना और सच्चरित्ररूपी महानगरी की अर्गला (सिटकिनी) कहा गया है । जिसने ब्रह्मचर्य की आराधना की है, उसने सभी व्रतों - शील, तप, विनय, संयम, अरे ! मुक्ति की भी आराधना की है ।

अबंभचरियं घोरं पमायं दुरहिट्ठियम् ।

'अब्रह्मचर्य घोर प्रमादरूप पाप है ।' **(दश वैकालिक सूत्र : ६.१७)**

अतः चलचित्र और विकारी वातावरण से अपनेको बचायें । पितामह भीष्म, हनुमानजी और गणेशजी का चिंतन करने से भी रक्षण प्राप्त होता है ।

धातुक्षय से तन कमजोर, मन कमजोर व मति मारी जाती है । आश्रम से प्रकाशित 'युवाधन सुरक्षा पुस्तक' बार-बार पढ़ें-पढ़ायें । संयमी, सशक्त और सभी क्षेत्रों में सफलता की कुंजी= ब्रह्मचर्य । **- श्री मलूकचंद शाह**

नौ योगीश्वरों के उपदेश

(गतांक से आगे)

जो कुछ दृश्य-अदृश्य, कार्य-कारण, सत्य और असत्य है, सब कुछ ब्रह्म है । इनसे परे जो कुछ है, वह भी ब्रह्म ही है । वह ब्रह्मस्वरूप आत्मा न तो कभी जन्म लेता है और न मरता है । वह न तो बढ़ता है और न घटता ही है । जितने भी परिवर्तनशील पदार्थ हैं चाहे वे क्रिया, संकल्प और उनके अभाव के रूप में ही क्यों न हों - सबकी भूत, भविष्यत् और वर्तमान सत्ता का वह साक्षी है । सबमें है । देश, काल और वस्तु से अपरिच्छिन्न है, अविनाशी है । वह उपलब्धि करनेवाला अथवा उपलब्धि का विषय नहीं है, केवल उपलब्धिस्वरूप-ज्ञानस्वरूप है। जैसे प्राण तो एक ही रहता है परंतु स्थानभेद से उसके अनेक नाम हो जाते हैं । प्राण, अपान, उदान, व्यान, समान आदि एक ही प्राण के दसों प्रकार के भेद हो जाते हैं। वैसे ही ज्ञान एक होने पर भी इन्द्रियों के सहयोग से उसमें अनेकता की कल्पना हो जाती है । जगत में चार प्रकार के जीव होते हैं - अंडा फोड़कर पैदा होनेवाले पक्षी-साँप आदि, नाल में बँधे पैदा होनेवाले पशु-मनुष्य, धरती फोड़कर निकलनेवाले वृक्ष-वनस्पति और पसीने से उत्पन्न होनेवाले कीटाणु, जूँ, खटमल आदि । इन सभी जीव-शरीरों में प्राणशक्ति जीव के साथ लगी रहती है । शरीरों के भिन्न-भिन्न होने पर भी प्राण एक ही रहता है । सुषुप्ति-अवस्था में जब इन्द्रियाँ निश्चेष्ट हो जाती हैं, अहंकार भी सो जाता है-लीन हो जाता है अर्थात् लिंगशरीर (सूक्ष्म शरीर) नहीं रहता, उस समय यदि कूटस्थ आत्मा भी न हो तो इस बात की पीछे से स्मृति ही कैसे हो कि मैं सुख से सोया था । पीछे होनेवाली यह स्मृति ही उस समय आत्मा के अस्तित्व को प्रमाणित करती है । जब भगवान को प्राप्त करने की इच्छा से तीव्र भक्ति की जाती है, तब वह भक्ति ही अग्नि की भाँति गुण और कर्मों से उत्पन्न हुए चित्त के सारे मलों को जला डालती है । जब चित्त शुद्ध हो जाता है, तब आत्मतत्त्व का साक्षात्कार हो जाता है । जैसे नेत्रों के निर्विकार हो जाने पर सूर्य के प्रकाश की प्रत्यक्ष अनुभूति होने लगती है ।

राजा निमि ने पूछा : योगीश्वरो ! अब आप लोग हमें कर्मयोग का उपदेश कीजिये, जिसके द्वारा शुद्ध होकर मनुष्य शीघ्रातिशीघ्र परम नैष्कर्म्य अर्थात् कर्तृत्व, कर्म और कर्मफल की निवृत्ति करनेवाला ज्ञान प्राप्त करता है ।

एक बार यही प्रश्न मैंने अपने पिता महाराज इक्ष्वाकु के सामने ब्रह्माजी के मानस पुत्र सनकादि ऋषियों से पूछा था, परंतु उन्होंने सर्वज्ञ होने पर भी मेरे प्रश्न का उत्तर न दिया । इसका क्या कारण था ? कृपा करके मुझे बतलाइये ।

अब छठे योगीश्वर आविर्होत्रजी ने कहा : राजन् ! कर्म (शास्त्रविहित), अकर्म (निषिद्ध) और विकर्म (विहित का उल्लंघन) - ये तीनों एकमात्र वेद के द्वारा जाने जाते हैं । इनकी व्यवस्था लौकिक रीति से नहीं होती । वेद अपौरुषेय हैं ईश्वररूप हैं, इसलिए उनके तात्पर्य का निश्चय करना बहुत कठिन है । इसीसे बड़े-बड़े विद्वान भी उनके अभिप्राय का निर्णय करने में भूल कर बैठते हैं । (इसीसे तुम्हारे बचपन की ओर देखकर तुम्हें अनधिकारी समझ के सनकादि ऋषियों ने तुम्हारे प्रश्न का उत्तर नहीं दिया) । ये वेद परोक्षवादात्मक हैं । ये कर्मों की निवृत्ति के लिए कर्म का विधान करते हैं । जैसे बालक को मिठाई आदि का लालच देकर औषध खिलाते हैं, वैसे ही ये अनभिज्ञों को स्वर्ग आदि का प्रलोभन देकर श्रेष्ठ कर्म में प्रवृत्त करते हैं । जिसका अज्ञान निवृत्त नहीं हुआ है, जिसकी इन्द्रियाँ वश में नहीं हैं, वह यदि मनमाने ढंग से वेदोक्त कर्मों का परित्याग कर देता है तो वह विहित कर्मों का आचरण न करने के कारण विकर्मरूप अधर्म ही करता है । इसलिए वह मृत्यु के बाद फिर मृत्यु को प्राप्त होता है । इसलिए फल की अभिलाषा छोड़कर और विश्वात्मा भगवान को समर्पित कर जो वेदोक्त कर्म का ही अनुष्ठान करता है, उसे कर्मों की निवृत्ति से प्राप्त होनेवाली ज्ञानरूप सिद्धि मिल जाती है । जो वेदों में स्वर्गादिरूप फल का वर्णन है, उसका तात्पर्य फल की सत्यता में नहीं है, वह तो कर्मों में रुचि उत्पन्न कराने के लिए है। **(क्रमशः)**

सही प्रवृत्ति से सहज निवृत्ति स्वतः

जब तक मनुष्य का चित्त शुद्ध नहीं होता, तब तक वह जिसका चिंतन करना चाहता है, उसका नहीं कर पाता और जिसका नहीं करना चाहता, उसका चिंतन होता रहता है । जो काम उसे करना चाहिए, उसे नहीं कर पाता और जो नहीं करना चाहिए, उसे करता है ।

इसलिए साधक को चाहिए कि जिस समय जो काम उसे कर्तव्यरूप में प्राप्त हो, उसको करने में अपनी विवेकशक्ति और क्रियाशक्ति को पूर्णरूप से लगाकर पूर्ण धैर्य, उत्साह और सावधानी के साथ जिस ढंग से उसे करना चाहिए, वैसे ही करे । उसे करने में न तो आलस्य करे और न जल्दबाजी करे । हरेक प्रवृत्ति के आरम्भ में यह विचार कर ले कि जो काम मैं करना चाहता हूँ, उससे किसीके अधिकार का अपहरण तो नहीं होता है ? वह किसीके अहित का कारण तो नहीं है ? यह सोचकर अपने प्रभु की सेवा के नाते उस काम को कुशलतापूर्वक पूरा करे । ऐसा कोई काम न करे जिससे भगवान का संबंध न हो, जो भगवान की आज्ञा और प्रेरणा के विरुद्ध हो ।

प्रवृत्ति के बाद निवृत्ति का आना अनिवार्य है । अतः जो काम कर्तव्यरूप से प्राप्त हो, उसे उपर्युक्त प्रकार से पूरा कर देने पर निवृत्तिकाल में साधक के चित्त की स्थिरता और अपने प्रेमास्पद के प्रेम की लालसा की जागृति अवश्य होती है । अनावश्यक संकल्प और व्यर्थ चिंतन अपने-आप शांत हो जाते हैं ।

कोई भी काम छोटा-बड़ा नहीं है । जिस काम को लोग साधारण और छोटा कहते हैं, वह कुशलतापूर्वक ठीक - जैसे जिस भाव से करना चाहिए, वैसे किये जाने पर साधक के लिए किसी भी उत्तम-से-उत्तम माननेवाले काम से कम नहीं रहता, क्योंकि कर्म करने की आवश्यकता किसी प्रकार के फल की कामना के लिए नहीं, किंतु कर्ता में जो क्रियाशक्ति का वेग है, उसे पूरा करने के लिए है ।

उक्त भाव से कर्म करने पर कर्तापन और भोक्तापन अपने-आप विलीन हो जाते हैं । जो उद्देश्य बड़े-बड़े साधनों से कठिनाई के साथ बहुत काल में पूरा नहीं होता, उसकी सिद्धि अनायास थोड़े ही समय में अपने-आप हो जाती है ।

कर्म के रहस्य को न जानने के कारण साधारण मनुष्य, जो काम जिस समय करना चाहिए, उसे उस समय नहीं करते एवं जब करते हैं, तब उसे भाररूप समझकर, जैसे-तैसे पूरा कर देने के भाव से करते हैं, पूरी शक्ति लगाकर नहीं करते । अतः उनका राग नष्ट नहीं होता । इससे जिस काल में वे कर्म से निवृत्त होते हैं, उस काल में भी उनके अंतःकरण में नाना प्रकार के व्यर्थ संकल्पों की स्फुरणा होती रहती है, क्योंकि उनमें क्रियाशक्ति का वेग बना रहता है अथवा वह काल आलस्य या निद्रा में चला जाता है ।

मनुष्य-जीवन का सब-का-सब समय अमूल्य है, अतः उसका एक क्षण भी व्यर्थ नहीं जाना चाहिए । उसमें भी जो निवृत्तिकाल है, जिस समय मनुष्य के सामने कोई करने योग्य कर्म नहीं रहता, वह समय तो खास तौर पर अपने परम प्रेमास्पद प्रभु का स्मरण-चिंतन करते हुए उनके प्रेम में डूबे रहने का ही है । ऐसे मौके में यदि साधक के चित्त में अनावश्यक संकल्प और व्यर्थ चिंतन होता रहे या तमोगुण की वृद्धि होकर वह समय जड़ता में व्यतीत हो जाय तो इससे बढ़कर दुःख देनेवाली भूल क्या हो सकती है ? इसलिए साधक को चाहिए कि उसे जो कर्म कर्तव्यरूप से प्राप्त हो, उसको पहले बताये हुए प्रकार से भगवान के नाते, उनकी आज्ञा और प्रेरणा के अनुसार, उनकी दी हुई शक्ति का कुशलतापूर्वक प्रयोग करके पूरा करता जाय । जैसे-जैसे साधक प्राप्त कर्तव्य को ठीक-ठीक पूरा करता जाता है, वैसे-ही-वैसे उसकी समस्त प्रवृत्तियाँ निवृत्ति में बदल जाती हैं ।

जो काम जिस प्रकार करना चाहिए, उस प्रकार धैर्य, उत्साहपूर्वक और सावधानी से न किये जाने पर

(शेष पृष्ठ : २७ पर)

मंत्रदीक्षा से बदली
जीवन की दिशा !

कौन कहता है कि सच्चे सद्गुरु से ली गयी मंत्रदीक्षा जिन्दगी की दिशा नहीं बदलती ? मेरा नाम डॉ. जौहरी लाल है । मैं जालंधर की बस्ती बावा खेल में क्लीनिक चलाता हूँ । जब मैंने गुरुदेव से दीक्षा नहीं ली थी तो मरीज को अस्पताल भेजने के बदले मुझे जो कमीशन मिलता था वह इस तरह है :

हार्ट ऑपरेशन - २५०००/-

एम.आर.आई. - २०००/-

सी.टी. स्केन - ८००/-

अल्ट्रा साउंड - २००/-

इसके अलावा लैबोरेटरी के जितने भी जाँच हैं उनका ५०% क्लीनिक में दे जाते थे । २७ सितम्बर १९९७ को परम पूज्य बापूजी से मंत्रदीक्षा लेने के बाद जीवन की दिशा ही बदल गयी । सितम्बर २००१ से पूनम व्रत लेने से जिन्दगी में, खान-पान, रहन-सहन में और भी निखार आया । अब किसी मरीज को मैं किसी अस्पताल में भेजता हूँ तो उसकी पर्ची पर पहले ही ५०% लैस लिख देता हूँ । साथ में मरीज को भी बता देता हूँ कि इतने ही पैसे देना । गुरुकृपा से मैं ओ.पी.डी. में प्रतिदिन १५० से २०० मरीज देख लेता हूँ । जब कमीशन लेता था तो मन में अजीब-सी चुभन होती थी लेकिन अब पाप जोर नहीं मारते । गरीब मरीज की सहायता करके विशेष आनन्द का अनुभव होता है । यह सब सद्गुरु की कृपा से ही संभव है । यह मंत्रदीक्षा का ही असर है ।

मैं परम पूज्य बापूजी को कोटि-कोटि प्रणाम करता हूँ, जिन्होंने मुझे जीवन जीने का सच्चा मार्ग दिखाया ।

– डॉ. जौहरी लाल, जालंधर ।

वर्षों पुरानी
बवासीर ठीक हुई

जुलाई २००५ की 'ऋषि प्रसाद' में खूनी और बादी बवासीर की उत्तम औषधि की बहुत उपयुक्त जानकारी छपी थी । मेरे पड़ोस में एक बहन को यह बीमारी बहुत दिनों से थी परंतु वह किसीको बतलाने में हिचकिचाती थी । उसकी आर्थिक स्थिति भी ठीक नहीं थी । बीमारी को सहन करते-करते उसका स्वास्थ्य बहुत बिगड़ गया था, मानसिक स्थिति भी कमजोर हो रही थी । किसी बड़े अस्पताल में जाकर खर्चा करना उससे होनेवाला नहीं था ।

मैंने उसे 'ऋषि प्रसाद' का अंक पढ़ने को दिया और बवासीर के इलाज की जानकारी दी । यह सस्ता, सरल प्रयोग जानकर उसने तुरंत यह उपचार शुरू किया । एक सप्ताह बाद उससे बीमारी के बारे में पूछा तो उसने बताया कि उसकी बीमारी पूरी होने को है और वह अब अच्छा स्वास्थ्य-लाभ ले रही है । यह सुनकर मैं भी आनंद-विभोर हो गया और पूज्य गुरुदेव के बताये हुए इलाज को लाख-लाख धन्यवाद देने लगा । वह बहन 'ऋषि प्रसाद' की सदस्या बन गयी है व बड़ी श्रद्धा से 'ऋषि प्रसाद' पढ़ती है ।

आजकल इस बीमारी के उपचार के लिए अस्पताल में बहुत खर्च करना पड़ता है, जो सामान्य आदमी पैसे न होने के कारण नहीं कर पाता और उसकी बीमारी बढ़ती ही जाती है । उपरोक्त प्रयोग का खूब प्रचार किया जाना चाहिए ताकि बवासीर के मरीज जल्द-से-जल्द इस बीमारी से छुटकारा पा सकें ।

– भावसार एस.आर.
शिवप्रभु कॉलोनी, प्लॉट नं.– ९२ अ,
चितौड़ रोड, धुलिया (महा.) ।
दूरभाष : (०२५६२) २४९६७६.

जीवन्ती (डोडी)
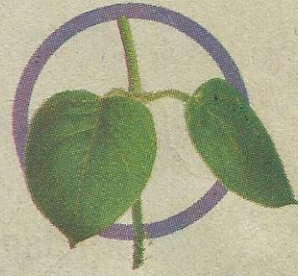
आयुष्य के लिए हितकर, बल, वीर्य व ओज के वर्धन में श्रेष्ठ द्रव्यों को महर्षि चरक ने 'जीवनीय द्रव्य' कहा है। उनमें से एक है जीवन्ती।

चतुर्मास में यत्र-तत्र पायी जानेवाली जीवन्ती को आयुर्वेद के शास्त्रकारों ने हरी सब्जियों में अग्रगण्य स्थान दिया है। इसे मराठी में हरणवेल या शिरदोडी तथा गुजराती में खरखोडी या डोडी कहते हैं। मधुर, शीतल, पचने में हल्की, बलदायी व त्रिदोषशामक (विशेषतः वात-पित्तशामक) होने के कारण शरद ऋतु में इसका सेवन विशेष लाभदायी है।

जीवन्ती आँखों के लिए विशेष हितकारी, शुक्र धातुवर्धक, स्वर को सुधारनेवाली, हृदय के लिए बलदायी, कफनिस्सारक, रक्तगत पित्त को शांत करनेवाली, मूत्र के साथ जानेवाले वीर्य को रोकनेवाली, बल्य, रसायन व जीवनी शक्तिवर्धक है। अतः दृष्टिमांद्य, रतौंधी, हृदय की कमजोरी, मूत्रावरोध, अतिसार, खाँसी, रक्तपित्त, प्रमेह, दौर्बल्य व क्षय में लाभदायी है।

औषधि प्रयोग

(१) रतौंधी में इसके पत्तों की गाय के घी में बनायी हुई सब्जी लाभदायी है।

(२) धातुपुष्टि के लिए जीवन्ती तथा अश्वगंधा का २-२ ग्राम चूर्ण मिश्रीयुक्त दूध के साथ लें।

(३) बार-बार होनेवाले **गर्भपात** में जीवन्ती, यष्टिमधु व शतावरी चूर्ण प्रत्येक २-२ ग्राम तथा मिश्री दूध में मिलाकर लें। उष्ण पदार्थों का सेवन न करें।

(४) नेत्रज्योतिवर्धनार्थ जीवन्ती के पत्तों की घी में बनायी हुई सब्जी अथवा ताजा रस नियमित लें।

श्रेष्ठ क्या है ?

जलों में	अंतरिक्ष जल	श्रेष्ठ है।
दुग्धों में	गाय का दूध	श्रेष्ठ है।
छाछों में	गाय के दूध की छाछ	श्रेष्ठ है।
मक्खनों में	गाय का मक्खन	श्रेष्ठ है।
घी में	गाय का घी	श्रेष्ठ है।
फलों में	काली द्राक्ष	श्रेष्ठ है।
अनाजों में	गेहूँ	श्रेष्ठ है।
दलहनों में	हरे मूँग	श्रेष्ठ हैं।
सब्जियों में	परवल	श्रेष्ठ है।
हरी सब्जियों में	जीवन्ती (डोडी)	श्रेष्ठ है।

शरद ऋतुचर्या

काल : सितम्बर – अक्टूबर

शारीरिक स्थिति	त्याज्य वस्तुएँ	विशेष
✲ स्वाभाविक ही पित्त का प्रकोप होता है। ✲ शरीर में लवण रस की वृद्धि होती है। ✲ सूर्य का ताप बढने से वर्षा ऋतु का संचित पित्त विदग्ध हो जाता है। ✲ पित्त का पाचक स्वभाव नष्ट होने से बुखार, पेचिश आदि रोग होते हैं।	✲ तीखे, नमकीन, खट्टे, गरम एवं दाह उत्पन्न करनेवाले पदार्थ। ✲ दही, खट्टी छाछ, इमली, टमाटर, पुदीना, कच्चे आम, मिर्ची, लहसुन, अदरक, हींग, अमचूर, राई, तिल, मूँगफली, सरसों, उड़द, कुल्थी, मकई, बाजरा, अनन्नास, बेलफल, शकरकंद, बैंगन, ककड़ी, भिंडी जैसे अम्लपाकी द्रव्य। ✲ नमक की मात्रा कम करें।	**हितकर** ✲ चन्द्रविहार, गरबा नृत्य। ✲ प्रातः हरड़ चूर्ण का मिश्री के साथ तथा रात्रि को त्रिफला चूर्ण का पानी के साथ सेवन। ✲ प्रवालपिष्टीयुक्त गुलकंद, आँवला-मिश्री का समभाग चूर्ण (समिति में उपलब्ध), आँवले का मुरब्बा। ✲ नीम, गिलोय, चिरायता, सुदर्शन चूर्ण का सेवन। ✲ मुलतानी मिट्टी से स्नान, शीतली व शीतकारी प्राणायाम। **अहितकर** ✲ अधिक उपवास, अधिक श्रम। ✲ धूप में घूमना।

('ऋषि प्रसाद' प्रतिनिधि)

राजस्थान के छोटे-से शहर पीपाड़ में २८ व २९ जुलाई को सत्संग सम्पन्न हुआ । इस शहर में पूज्यश्री का यह प्रथम आगमन था । यहाँ पिछले तीन-चार साल से भारी अकाल था । न जाने क्यों इस क्षेत्र से मेघ देवता नाराज थे । लोगों ने पूज्यश्री से प्रार्थना की । सत्संग के दौरान उपस्थित श्रद्धालु श्रोताओं से पूज्यश्री ने पूछा : ''बरसात चाहिए ?' सभीने एक स्वर में हामी भरी और समस्त सत्संग मंडप में सन्नाटा छा गया । पूज्यश्री मौन हो गये । बारिश लाने के मंत्र का स्मरण किया । कुछ ही क्षणों में तेज बारिश शुरू हो गयी, बारिश के इंतजार में मुरझाये स्थानीय लोगों के चेहरों पर खुशी छा गयी । तेज बरसात देखकर लोग चकित हो गये, नाचने लगे । प्रार्थना और मंत्र के बल का प्रत्यक्ष दर्शन करके ईश्वर के प्रति लोगों की आस्था बढ़ी, आनंद बढ़ा । पूज्य बापूजी के समक्ष प्रत्यक्ष दैवी लीला को देखकर लोग निहाल हो गये । इसके हजारों प्रत्यक्षदर्शी रहे । भारतीय संस्कृति का मंत्र-विज्ञान अभी भी सक्षम है । शुद्ध हृदय व श्रद्धावान मंत्रशक्ति को जाग्रत कर लेते हैं और घटना घट जाती है । जैसे १९५६ में राजगोपालाचारी ने वर्षा करा दी ।

क्षेत्र में बस एक ही चर्चा आम हो गयी, सभीकी जुबां पर यही सुनायी दे रहा था कि ''बापू आये, बरसात लाये ।''

अगले दिन ३० जुलाई को दो दिवसीय सत्संग सूर्यनगरी जोधपुर में हुआ । पूज्यश्री ने यहाँ के इतिहास पर दृष्टिपात करते हुए बताया कि 'सन् १४५९ में राव जोधा द्वारा स्थापित जोधपुर क्षेत्र में पहले 'द्रुम कुल्य सागर' लहराता था, जो कालान्तर में भगवान श्रीरामजी के अग्निबाण से मरुस्थल में परिणत हो गया । महाभारतकाल में यह क्षेत्र 'जांगल देश' कहलाता था और कौरवों के शासन में आता था ।

मरुमण्डल, मरुवार, मारवाड़, मरुदेश, मरुधर नाम से विख्यात इस धोरारी धरती पर ब्रह्मस्वरूप गुरुवर के पधारते ही मेघदेवता ने कभी तेज बौछारों से तो कभी रिमझिम फुहारों से अपनी प्रसन्नता जाहिर की और प्राणिमात्र में अपना स्वरूप देखनेवाले ब्रह्मर्षि का स्वागत किया ।

व्यासपीठ पर विराजमान होते ही पूज्यश्री ने आत्मीयतापूर्ण लहजे में कहा : **''किकर हो जोधपुरियां... अठै रावण का चबूतरा माथै सत्संग सुणनै आयो हो कांई।''** उपस्थित विराट भक्तसमुदाय पूज्यश्री के सहृदय भाव और आत्मीयतापूर्ण वाणी सुनकर गद्गद हो उठा।

पूज्यश्री ने सत्संग-स्थल 'रावण का चबूतरा मैदान' का नाम बदलकर 'दशहरा मैदान' नामकरण किया । उपस्थित विशाल जनसमुदाय ने इसके लिए अपनी सहमति जतायी और ३० जुलाई से 'रावण का चबूतरा मैदान' 'दशहरा मैदान' बन गया ।

बापूजी की प्रेरणा से जनता जनार्दन, प्रशासन व अखबारों ने **'रावण का चबूतरा'** लिखने-कहने के बजाय **'दशहरा मैदान'** लिखना, कहना प्रारंभ कर दिया ।

पूज्यश्री ने कहा : ''प्रमाण-पत्रों से इतनी योग्यता विकसित नहीं होती जितनी सत्संग से होती है । आत्मा-परमात्मा का, प्रकृति का, सूक्ष्म जगत का तो ज्ञान होता ही है, व्यावहारिक जगत में भी सत्संगी कुशल हो जाता है ।

संयम, साहस, परदुःखकातरता जैसे गुण सत्संगी में सहज ही विकसित होते हैं । सत्संग से योग्यताओं में जो निखार आता है वह बड़ी-बड़ी डिग्रियों से नहीं आता । बड़ी-बड़ी डिग्रियोंवाले सुरेशानंद के आगे बैठते हैं ।

सत्संग से ऐसी योग्यताएँ विकसित होती हैं जिनके आगे ऐहिक डिग्रियों की योग्यताएँ नन्ही पड़ जाती हैं । कबीरजी, तुलसीदासजी, मेरे लीलाशाह बापू के पास प्रमाणपत्र नहीं थे लेकिन ऐहिक प्रमाणपत्र की थप्पियोंवाले उनके दासानुदास बन जाते थे ।

शास्त्र डंके की चोट पर कहते हैं :

सो जानब सतसंग प्रभाऊ ।
लोकहुँ बेद न आन उपाऊ ॥

लौकिक, वैदिक पढ़ाई उनके आगे कोई मायने नहीं रखती ।''

राजस्थान की राजधानी, गुलाबी नगरी जयपुर के गोविंदपुरा स्थित आश्रम में ७ से ९ अगस्त तक 'श्रावणी पूर्णिमा दर्शनोत्सव व सत्संग' सम्पन्न हुआ । यहाँ के भक्तों को सत्संग की महिमा बताते हुए पूज्यश्री ने कहा : ''सत्संग से वंचित व्यक्ति जगत के व्यवहार को सत्य मानकर शारीरिक, बौद्धिक व भावनात्मक तनाव में फँस जाता है और नासमझी का शिकार हो जाता है । ब्रह्मज्ञान के सत्संग से नासमझी का नाश होता है ।

सत्संग के बिना मनुष्य को जगत का व्यवहार सताता है और बिना सत्संग के भाग्य के कुअंक भी नहीं मिटते, इसलिए मनुष्य को नित्य सत्संग करना चाहिए ।''

पूज्य बापूजी ने ब्रह्मज्ञान के सत्संग, मंत्र साधना, मौन की महिमा, रक्षाबंधन की महत्ता के साथ-साथ शरीर को स्वस्थ व मन को प्रसन्न रखने की कुंजियाँ भी बतायीं । पूज्यश्री के पावन सान्निध्य में रक्षाबंधन महोत्सव के निमित्त जयपुर में सत्संग-आयोजन का यह प्रथम अवसर था ।

९ अगस्त की रात्रि में पूज्यश्री विमान से अमदावाद पहुँचे । जहाँ पूनम व्रतधारी सद्गुरु दर्शन के लिए पलकें बिछाये बैठे थे ।

१५ व १६ अगस्त को सूरत आश्रम (गुज.) में श्रीकृष्ण जन्माष्टमी के अवसर पर सत्संग व जन्माष्टमी महोत्सव संपन्न हुआ । इस वर्ष के श्रीकृष्ण जन्मोत्सव कार्यक्रम में सूरत में हाल ही में आयी बाढ़ से संदर्भित राहत कार्यक्रम का तीसरा चरण सम्पन्न हुआ । उपस्थित सत्संगी शिष्यों को गूगल, देशी घी आदि से बने धूप के पैकेट दिये गये तथा पूज्यश्री ने उन्हें घर-घर जाकर धूप करके रोगाणुओं से रक्षा का मंत्र व भगवन्नाम उच्चारण करने की विधि बतायी । पूज्यश्री ने सूरतवासियों को 'हाय-हाय...' करके हताशा-निराशा बढ़ाने के बजाय 'हरि-हरि' करके जीवन में नयी उमंग, सात्त्विक उद्यम, सत्साहस, धैर्य, सद्बुद्धि, सद्शक्ति तथा प्रतिकूल परिस्थितियों के सिर पर पैर रखकर फिर से उठ खड़े होने का पराक्रम जगाने का संदेश दिया । श्रीकृष्ण-तत्त्व में नित्य रमण करनेवाले पूज्यश्री ने बालकृष्ण के प्रिय भोग मक्खन-मिश्री का प्रसाद अपने करकमलों से लुटाया ।

इससे पूर्व बाढ़ आपदा से प्रभावित सूरतवासियों के प्रति सहानुभूति व्यक्त करते हुए पूज्यश्री ने केन्द्र व राज्य सरकार से सूरतवासियों के लिए टोल टैक्स व अन्य टैक्सों में २-३ वर्ष के लिए उदारता बरतने की अपील की ताकि इस प्राकृतिक आपदा से प्रभावित जनजीवन सामान्य हो सके ।

पूज्यश्री के आगामी सत्संग कार्यक्रम

(1) 29 से 31 अगस्त, सरदार पटेल मेडिकल कॉलेज ग्राउन्ड, बीकानेर (राज.)। संपर्क: (0151) 2528091, 9829188925.
(2) 1 से 3 सितंबर, पानी की टंकी के पास, पोकरण रोड, रामदेवरा जि. जैसलमेर (राज.)।
संपर्क: 9829092466, 9829797999.
(3) 6 से 7 सितंबर (सुबह ९ बजे तक), सत्संग-पूर्णिमा दर्शन : अमदावाद आश्रम। संपर्क: 27505010-11.
(4) 7 (सुबह) से 10 सितंबर, पूर्णिमा दर्शन-सत्संग : दशहरा मैदान, फरीदाबाद (हरियाणा) । संपर्क : (0129) 2480608, 9811580503, 9818865556.

आश्रम द्वारा बाढ़ राहत सेवाकार्य

तापी नदी के तट पर बसे सूरत (गुजरात) एवं आस-पास के क्षेत्रों में आयी भीषण बाढ़ में पूज्यश्री की पावन प्रेरणा से शिष्यों की टुकड़ियाँ युद्धस्तर पर राहतकार्यों में लग गयी थीं ।

अमदावाद आश्रम में सैकड़ों शिष्यों ने दिन-रात लगकर श्रमयज्ञ द्वारा सुखड़ी, पूड़ी, चिउड़ा, बिस्कुट आदि के पैकेट बनाये ।

८ अगस्त को सूरत के पांडेसरा, वराछा और कतारगाम क्षेत्रों में प्रभावित लोगों को गरमा-गरम खिचड़ी और कढ़ी खिलायी गयी तथा १५,००० भोजन पैकेट बाँटे गये । अमदावाद से ट्रेन द्वारा भेजने के लिए १०,००० भोजन पैकेट आश्रम द्वारा गाँधीनगर तथा अमदावाद के जिलाधीश कार्यालय को सुपुर्द किये गये । ९ अगस्त को २०,००० पानी के पाउच बाँटे गये । १० अगस्त को चने, मुरमुरे, गुड़ तथा मूँगफली के २०,००० पैकेट बाँटे गये ।

जहाँगीरपुरा, सूरत आश्रम में ७ से ८ फुट पानी भर गया था । पानी कम होते ही आश्रम के सेवक तत्काल राहतकार्य में लग गये । बिजली उपलब्ध न होने से जनरेटर द्वारा बोर का पानी निकालकर बाढ़ग्रस्तों के लिए भेजा गया । अंतिम जानकारी प्राप्त होने तक २५० टैंकर पीने का पानी पहुँचाया गया । आश्रम से पीने का पानी प्राप्त करने हेतु अपने व्यक्तिगत वाहनों को लेकर आये लोगों के लिए पानी की पूर्ण व्यवस्था की गयी ।

रांदेर, मजुरा गेट, चौक बाजार, नानपुरा, अमरोली, अठवा लाइन्स, घोडदोड़ रोड, मोरा भागल, वरीयाव, छापरा भाटा, कठोरगाम आदि क्षेत्रों में ५०,००० भोजन पैकेट बाँटे गये । वरीयाव गाँव के तहसीलदार को बाढ़ग्रस्तों में बाँटने के लिए गरमा-गरम खिचड़ी व कढ़ी सुपुर्द की गयी ।

पीड़ितों के उपचार के लिए ८ वैद्य, डॉक्टर एवं दो चलचिकित्सालय तत्काल सेवा में लग गये, जिनके द्वारा १३,००० से अधिक लोगों को उपचार-सेवा प्रदान की गयी । परिस्थितियों का आकलन कर सूरत, दाहोद और भीलोड़ा क्षेत्रों से ३ चल-चिकित्सालय बसें भी भेजी गयीं ।

अमदावाद आश्रम से ५५ साधक राहतकार्य के लिए गये, जिनके साथ सूरत के स्थानीय साधकों सहित ५०० सेवाधारी दिन-रात मानवरूपी महेश्वर की सेवा में लग गये ।

जहाँ पानी का स्तर कम था वहाँ ट्रैक्टर द्वारा भोजन-वितरण किया गया तथा जहाँ पानी का स्तर बहुत ही अधिक था वहाँ शासकीय हेलीकोप्टर तथा नावों द्वारा उपरोक्त सहायता प्रदान की गयी । १६ अगस्त को असरग्रस्त इलाकों में वैदिक पद्धति से निर्मित जीवाणुनाशक धूप करने का अभियान कतारगाम धनमोरा से शुरू किया गया।

वल्लभीपुर जि. भावनगर (गुज.) के साधकों ने बूँदी और गाँठिये के पैकेट जिलाधीश को सुपुर्द किये । लुणावाड़ा (गुज.) समिति द्वारा खारोल, राबड़िया क्षेत्रों में भोजन पैकेट बँटवाये गये । नासिक (महाराष्ट्र) में ९ अगस्त से नासिक के बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों में २००० प्रभावित लोगों को प्रतिदिन भोजन खिलाया गया । अमदावाद के विभिन्न बाढ़ग्रस्त विस्तारों में १५ अगस्त से बाढ़पीड़ित लोगों को प्रतिदिन भोजन खिलाने की सेवा जारी रही । अंतिम जानकारी प्राप्त होने तक यह सेवाकार्य जारी था ।

चन्द्रपुर (महा.) में आयी बाढ़ से प्रभावित लोगों में नागपुर आश्रम द्वारा भोजन-व्यवस्था करायी गयी । यवतमाल (महा.) के बाबुलगाँव तहसील के अन्तर्गत आनेवाले बाढ़ग्रस्त कोटंबा, लोनी, वेणी गाँव में कपड़े, अनाज तथा साहित्य वितरण किया गया ।

जमशेदपुर (झारखंड) में मानगो क्षेत्र के ५०० घरों में बाढ़ का पानी भर गया था । यहाँ भी भोजन-व्यवस्था करायी गयी ।

देखिये और दिखाइये...
पूज्य बापूजी के सत्संग-अमृत की विडियो सी.डी.
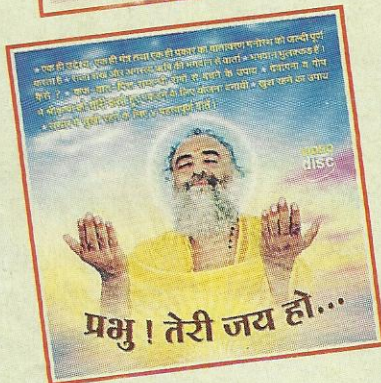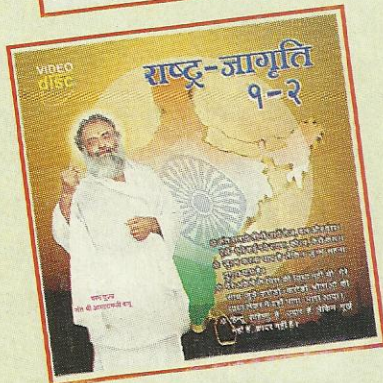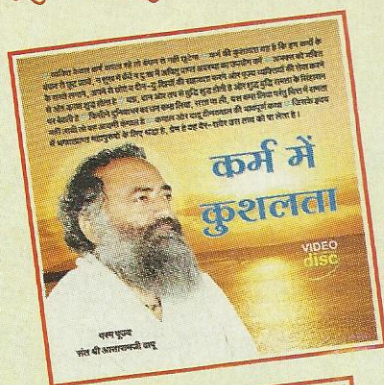
1 September 2006
RNP.NO. GAMC 1132/2006-08
Licenced to Post without Pre-Payment
LIC NO. GUJ-207/2006-08
RNI NO. 48873/91.
DL (C) - 01/1130/2006-08.
WPP LIC.NO. U (C)-232/2006-08
G2/MH/MR-NW-57/2006-08
WPP LIC NO. NW-9/2006

६ वी.सी.डी. का मूल्य रु. २१०
(डाकखर्च सहित रु. २५०)
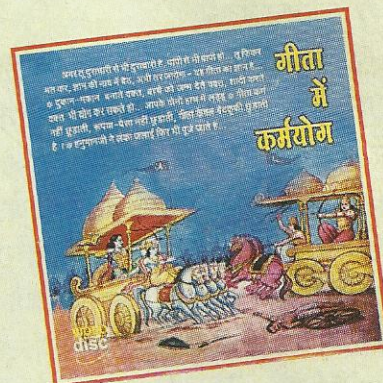
मनीऑर्डर अथवा डी.डी. भेजते समय कैसेट का नाम अवश्य लिखें ।
पता : सत्साहित्य विभाग, संत श्री आसारामजी महिला उत्थान आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, पिन. ३८०००५.

संत श्री आसारामजी आश्रम व उसकी सेवा समितियों द्वारा देश के विभिन्न बाढ़पीड़ित स्थानों पर किये जा रहे सेवाकार्य

Posting at Rishi Prasad PSO between 1st to 14th of E.M. Back issue at PSO-AHD ❋ Posting at ND.PSO on 5th & 6th of E.M ❋ Posting at MBI Patrika Channel on 9th & 10th of E.M.